

# कुंडलिनी

एक अनकही कथा

KUNDALINI

NOW IN HINDI

ओम स्वामी

# कुंडलिनी

## एक अनकही कथा

# KUNDA LINI

NOW IN HINDI

## ओम स्वामी

जयको पब्लिशिंग हाउस

Published by Jaico Publishing House
A-2 Jash Chambers, 7-A Sir Phirozshah Mehta Road
Fort, Mumbai - 400 001
jaicopub@jaicobooks.com
www.jaicobooks.com

© Om Swami

KUNDALINI - AN UNTOLD STORY
**कुंडलिनी – एक अनकही कथा**
ISBN 978-93-86348-96-8

First Jaico Impression: 2017

Translator: Rachana Bhola 'Yamini'

No part of this book may be reproduced or utilized in any form or by any means, electronic or mechanical including photocopying, recording or by any information storage and retrieval system, without permission in writing from the publishers.

।। ओम श्री मात्रयैः नमः ।।

आपके भीतर बसी दिव्यता को समर्पित

प्रातरुत्थाय सायाह्नं सायाहनात् प्रातर्एव तु,
यत्क्रओमि जगन्मातस्तद्एव तव पूजनम्.

हे जगन्माता, सुबह के पहले क्षण से अंतिम क्षण
तक और संध्या से प्रात तक मैं जो भी करता हूँ।
वह सब आप ही की आराधना है।

# यह पुस्तक क्यों?

एक महिला आश्रम में मुझसे भेंट करने आईं। वे चक्रों के विषय में पूरी जानकारी रखती थीं। उनका वास्तु, फेंग शुई और टैरो में पूरा विश्वास था। वास्तव में, यह भी कह सकते हैं कि यही उनके व्यापार के साधन भी थे। उस दिन वे थोड़ी चिंतित थीं क्योंकि एक प्रसिद्ध 'चक्र विशेषज्ञ' ने उनसे कहा था कि उनके चक्र सही ढंग से घूम नहीं रहे और इसी वजह से उनके काम पर बुरा असर पड़ रहा था।

"जी, क्या कहा आपने? फिर से कहिए!" मैंने कहा, "आपके चक्रों का क्या सही नहीं है?"

"स्पिन यानी वे सही तरह से नहीं घूम रहे, मेरे चक्रों का स्पिन सही नहीं है।" उन्होंने उत्तर दिया।

"आप क्या है?" मैंने दबी हँसी के बीच कहा, "आप कोई मोटरकार हैं जो आउट ऑफ स्पिन हो गई है?"

वे समझ नहीं पाईं कि मैं गंभीर था या मज़ाक कर रहा था, वे थोड़ा असहज भाव से मुस्कुराईं। मैं मज़ाक नहीं कर रहा था, हालाँकि कुछ सैकेंड के लिए मैं चुपचाप हँसा। दरअसल, मुझे उनकी अज्ञानता पर अफ़सोस भी हुआ, कि उन जैसे सभी साधकों के साथ ऐसा ही होता है, जो अक्सर 'चक्र विशेषज्ञों' की बातों के जाल में आ जाते हैं।

"तो, इसके अलावा उन्होंने और क्या बताया?" मैंने पूछा

"उन्होंने कहा है कि मुझे चक्र वाला लॉकेट गले में पहनना चाहिए और एक ख़ास तरह की धूप-अगरबत्ती जलानी चाहिए।"

"ठीक, उससे क्या होगा?"

"फिर मेरे चक्रों का संतुलन बन जाएगा।" फिर उन्होंने मुझे दिखाने के लिए लॉकेट बाहर निकाला। जो कि काफ़ी महँगा दिख रहा था। सफ़ेद रंग के सोने से बनी चार कमल पंखुड़ियों के बीच एक बड़ा सा नग जड़ा था और पंखुड़ियों पर पन्ने, माणिक्य, दूधिया पत्थर व पुखराज़ जड़े हुए थे। "उनके अनुसार इसे मेरे हृदय को स्पर्श करना चाहिए।"

"यह आपके हृदय को स्पर्श तो कर रहा है, पर यह इससे ज़्यादा आपके लिए कुछ नहीं कर रहा। क्या मैं ठीक कह रहा हूँ?"

उनके चेहरे से सारे भाव कहीं खो गए और आँखें कुछ नम हो गईं। उनके होंठ कुछ तिरछे से हो आए।

“ऐसा क्यों है, स्वामी जी? मैंने तो इस चीज़ पर इतना पैसा लगाया है।”

“वीना! ये सब निराधार बातें हैं!”

वे थोड़ी मायूस और नाराज़ दिखाई दीं, मानो किसी ने उन्हें हीरे के दामों में चमकता हुआ पत्थर थमा दिया हो।

“पर मुझे तो लगता था कि चक्र वास्तव में होते हैं।”

“बेशक! चक्र तो वास्तव में होते हैं, वीना!”

“फिर?”

“मैं केवल यह कहना चाहता था कि ये चक्रों का संतुलन और जटिल भाषा का जाल तो केवल लोगों को मूर्ख बनाने के लिए है। कुंडलिनी को जाग्रत करने का एकमात्र उपाय यही है कि आप लंबी अवधि तक ध्यान साधना करें, एकमात्र यही सत्य है।”

“तो क्या चक्र पेंडेंट मेरे लिए इस साधना की गति को नहीं बढ़ा सकता?”

मैंने कहा “अगर आप नौ महिलाओं को एक साथ गर्भ धारण करवा दें और पहले ही माह में प्रसव भी, तब शायद संभव है कि आप इतनी ही तेजी से अपनी कुंडलिनी भी जागृत कर सकती हैं।”

“स्वामी जी! क्या ऐसा करना संभव है?”

मैं खिलखिला कर हँस पड़ा। मैं मन ही मन सोचने लगा, कितनी हैरानी की बात है, हम लोग भी ना जाने कैसी-कैसी बातों पर विश्वास करने के लिए राजी हो जाते हैं।

केवल वीना का ही मामला ऐसा नहीं है। मेरी ऐसे कई साधकों से भेंट होती है जो अपने लिए तुरत-फुरत समाधान पाना चाहते हैं। मुझे तब व्यंग्यमय लगता है जब लोग किसी बहुत ही साफ-सुथरी जगह पर जाते हैं, जहाँ पर धीमी सी रोशनी में कोई छोटी सी परंतु महंगी शिव या बुद्ध प्रतिमा कोने में रखी है। उसके आगे एक छोटा सा दीया टिमटिमा रहा होता है। वातावरण में भीनी-भीनी सुगंध होती है और हल्का सौम्य संगीत बज रहा होता है और वे मुझसे कहते हैं, “ओह, स्वामी जी, क्या आप इस स्थान की ऊर्जा को अनुभव कर पा रहे हैं?” मैं मुस्कुरा कर उनकी बात टाल देता हूँ, पर वे किस ऊर्जा की बात कर रहे हैं, मुझे इसका ज़रा सा भी अंदाज़ा नहीं हो पाता।

हाँ, आप बेहतर महसूस करते हैं, आपको अच्छा लगता है, पर इसका आपके चक्रों या ऊर्जा से कोई लेन-देन नहीं है। यह तो उस स्थान का निजी परिवेश है, इससे तो बेहतर होगा कि आप किसी आयुर्वेदिक स्पा में अपना समय बिताएँ, कम से कम आपको अपने पैसों का मोल तो मिलेगा, वहाँ वे आपसे एक ग्राहक की तरह पेश आएँगे और आपको किसी ऐसी बेचारी, अनजान गाय समझ कर दुहा नहीं जाएगा, जो शायद किसी दूसरे के खेत से भटक कर, आपके यहाँ आ गई है।

चक्र ब्रेसलेट, लॉकेट, अगरबत्तियाँ, मैट, कालीन, वस्त्र, दीवारों पर लटकाने वाली तस्वीरें, चक्र संगीत, व अन्य ऐसे साधनों व सामग्री का, चक्रों की वास्तविक साधना से कोई संबंध नहीं है। जो भी कोई, आपको या आपके माथे को (या जहाँ भी) छू कर, आपकी कुंडलिनी जाग्रत

करने का दावा करता है, वह झूठ बोल रहा है, भले ही वह व्यक्ति दिखने और सुनने में कितना भी असली और क़रिश्माई क्यों न हो।

इसके बाद ऐसे लोग आते हैं, जो आपके चक्रों को देखने या पढ़ने का दावा करते हैं। वे भी आपको मूर्ख बनाना चाह रहे हैं। किसी के चक्र देखने का सूक्ष्म दृष्टि से कोई संबंध नहीं है। जब चक्रों की बात आती है, तो इसमें देखने या पढ़ने वाली कोई बात ही नहीं है। आपके चक्र किसी पुस्तक के पृष्ठ नहीं हैं, जिन्हें कोई भी पढ़ सकता है। लोग तो चक्रों के खुलने या बंद होने की बात इस तरह करते हैं मानो वह किसी बिस्कुट के जार का ढक्कन है, जिसे कभी भी, आसानी से खोला या बंद किया जा सकता है। आपकी रीढ़ की हड्डी में ऊपर की ओर जाने वाली सरसराहट के एहसास का कुंडलिनी के जागरण से कोई संबंध नहीं। यदि ऐसा लगातार होता रहे तो किसी स्नायुविशेषज्ञ को दिखाएँ!

आपने भी सुना होगा कि किस प्रकार प्रत्येक चक्र के लिए सुनिश्चित पंखुड़ियाँ, विशेष वर्ण, विभिन्न प्रकार के इष्ट देव, अनेक सहायक इष्ट, विभिन्न आकार आदि होते हैं। मैं आपको बताना चाहता हूँ, ये सब अनावश्यक जटिलताएँ हैं। चक्रों के वास्तविक सत्य की समझ तो पूरी तरह से अलग बात है।

"न रूपम् अस्येह तथोपलभ्यते नान्तो न चादिर् न च सम्प्रतिस्त्ठा अश्वत्थम् एनम् सुविरूढमूलम् असत गशस्त्रन्अ द्रढेन छित्त्वा ततह् पदम् तत् परिमार्गितव्यम् यस्मिन् गता न निवर्तन्ति भूयह् तम् एव चाद्यम् पुरुस्अम् प्रपद्ये यतह् प्रव्त्तिह प्रस्त्ता पुरानई"

(भगवद् गीता : 15, 3, 4)

"इस संसाररूपी वृक्ष के वास्तविक रूप का अनुभव इस जगत में नहीं किया जा सकता क्योंकि न तो इसका कोई आदि है, न तो कोई अंत और न ही कोई आधार है, अत्यंत दृढ़ता से स्थित इस वृक्ष को केवल वैराग्यरूपी हथियार से ही काटा जा सकता है।"

वैराग्य रूपी हथियार से काटने के बाद मनुष्य को उस परम लक्ष्य के मार्ग की खोज करनी चाहिए, जिस मार्ग पर पहुँचा हुआ मनुष्य फिर इस संसार में कभी वापिस नहीं लौटता, फिर मनुष्य को उस परमात्मा के शरणागत हो जाना चाहिए, जिस परमात्मा से इस आदि रहित संसार रूपी वृक्ष की उत्पत्ति और विस्तार होता है।"

यही कुंडलिनी का पूरा सत्य व चक्रों की वास्तविकता है। आपने अब तक जो भी सुना, देखा या पढ़ा होगा, वह सच नहीं है, कम से कम पूरा सच तो नहीं है। जिस क्षण में आप चक्रों को बेधने का अनुभव या कुंडलिनी के जागरण के बारे में जान लेंगे, तो आप परमानंद की उस अवस्था में आ जाएँगे, जिस बिंदु से कोई वापसी नहीं है।

मक्खन के रूप में मथे गए दूध को, फिर से दूध में नहीं बदला जा सकता। ठीक उसी तरह, जब आप सच्ची प्रकृति को जान लेते हैं, तो भले जो भी हो जाए, आपकी पुरानी प्रवृत्तियाँ व नकारात्मक भाव आपको सदा के लिए छोड़ देते हैं। सभी जीवों के कल्याण के प्रति आपके

हृदय में स्वयं ही निःस्वार्थ भाव उत्पन्न हो जाता है। आप स्वयं से ही बाहर हो जाते हैं। ऐसा नहीं कि उस समय अगर कोई आपको मारेगा तो आपको चोट नहीं लगेगी। बेशक़, आपको कष्ट होगा, पर अब आप पहले की तरह, उस पर क्रोधित नहीं होंगे, जिसने आपको कष्ट दिया।

कुंडलिनी के जागने का अर्थ है कि अब आप अपने भीतर बसे परमानंद और सहजता की अवस्था तक जा रहे हैं। यह अवस्था दस परतों से ढकी है — इच्छा, क्रोध, लोभ, मोह, अहं, जुनून, ईर्ष्या, घृणा, भय तथा स्वार्थ। जब आप आध्यात्मिक रूप से उन्नत होते हैं तो इन परतों से उबरने लगते है। इन आवरणों को भेदने के बाद ही भीतर से आपका असली रूप सामने आता है। आपके भीतर का सच, कष्ट और दुःख, अच्छे-बुरे और नैतिक-अनैतिक के द्वैत से परे है। जागृति, कुंडलिनी साधना के पथ पर एक धीमी और स्थिर प्रक्रिया है। यह कोई ऐसा आत्मबोध नहीं, जो एक क्षण में प्रकट हो जाए। यह उत्पन्न होता है और फिर धीरे-धीरे आपके भीतर विकसित होता है। जागृति के प्रत्येक स्तर के साथ, आप अपने भीतर के परिवर्तन को पहचानते हैं और अपने भीतर की प्रवृत्तियों का त्याग कर पाते हैं।

कुंडलिनी विज्ञान एक प्राचीन विद्या है, जिसे सुयोग्य साधकों को, कड़े अनुशासन के बीच, मौखिक विधा के साथ सौंपा गया। यह विज्ञान आज भी पूरी तरह से बरकरार है। केवल ऐसा व्यक्ति चाहिए जो कड़े समर्पण और दृढ़ता के साथ इस पथ पर चल सके।

आइऐ, मैं आपको स्त्रोत की ओर ले चलता हूँ, जो ज्ञान जड़ों में पाया जाता हो, उसे आप पत्तियों के माध्यम से कभी नहीं समझ सकते। आप शाखाओं से भ्रमित न हों। फलों को देख कर पथभ्रष्ट न हों। आपको केवल जड़ को सींचना है, और पूरा वृक्ष आपका होगा।

# कुंडलिनी महाध्यान की उत्पत्ति

# कुंडलिनी – आरंभ

मेरे और आपके वर्तमान अस्तित्व धारण करने से बहुत समय पूर्व, धरती एक सुंदर ग्रह था जिस पर वनों, वनस्पतियों, पशु जगत तथा हज़ारों की संख्या में झीलों व नदियों की बहुतायत थी। लगभग नौ सौ करोड़ प्रकाश वर्षों की दूरी पर, तारों के बीच, एक समानांतर जगत था, जिसमें धरती जैसा एक ग्रह भी था, जो कि पृथ्वी से पाँच गुना विशाल व कहीं अधिक सुंदर था।

धरती जैसे दिखने वाले इस ग्रह के सौर मंडल का सूर्य, हमारे सूर्य से आकार में दुगुना था। दिन और रातें लंबे थे। इसके वनों में विशालकाय हिंसक जानवर मुक्त भाव से विचरते थे, जो हमारे सागरों से भी कहीं विस्तृत थे। हमारे हिमालय से लगभग आठ गुना विशाल हिमालय पूरी तरह से हिमाच्छादित था। उस हिमालय पर, सबसे विशाल, विस्तृत तथा ऊँची पर्वत शृंखला कैलाश कहलाती थी।

कैलाश ही वह स्थान था, जहाँ शिव अपनी वामांगी सती के साथ वास करते थे व ध्यान में स्थित रहते। कुछ ऋषियों का कहना था कि उनका जन्म सृष्टि की रचना के समय, वज्र तथा तूफान से हुआ, जबकि कुछ का कहना था कि वे किसी दूसरे ब्रह्माण्ड से थे और उन्होंने कैलाश को अपना धाम बना लिया था। शिव अपनी यौगिक शक्तियों के बल पर ही सदैव युवा, आकर्षक तथा मनमोहक बने रहते।

एक बार सती के पिता, प्रसिद्ध राजा दक्ष ने ऐसा भव्य और महान यज्ञ रचाया कि तीनों युगों में किसी ने नहीं सुना था। इस महा व्ययसाध्य यज्ञ में ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, वसु, आदित्य तथा अन्य असंख्य देवों को भी आमंत्रित किया गया। स्वयं महान बृहस्पति यज्ञ के प्रमुख ऋत्विक थे, वे मंत्रों के उचित उच्चारण से ले कर, वहाँ बनाए गए एक लाख यज्ञ कुंडों में डाली जाने वाली यज्ञ सामग्री आदि तक, सभी पक्षों का निरीक्षण स्वयं कर रहे थे।

सारा वातावरण शंखों तथा संस्कृत मंत्रों की सुमधुर ध्वनियों से गुंजायमान था, जो दिव्य वैद्य धनवंतरि द्वारा तैयार किए गए अमृत से अधिक स्फूर्तिदायक तथा इंद्रलोक में परोसी जाने वाली मदिरा से कहीं अधिक मदोन्मत्त कर देने वाले थे। अतिथियों को हर प्रकार की सुख-सुविधा प्रदान करने के लिए विशाल ढाँचे तथा भवन तैयार किए गए थे जिनमें विलासिता की हर सामग्री मौजूद थी।

यज्ञशाला भी अपने-आप में किसी अतुलनीय महल से कम नहीं थी, जिसमें बैठने के लिए अनेक खुले तथा छतदार स्थान थे। विस्तृत मार्गों पर, श्वेत व अश्वेत अश्व असंख्य रथों को लाने-ले जाने में जुटे थे ताकि अतिथि आसानी से आवागमन कर सकें। यदि हमारे वर्तमान समय के अनुसार गणना की जाए तो कहते हैं कि पहले यज्ञकुंड से अंतिम यज्ञकुंड तक जाने में ही सात दिन का समय लग जाता था।

जहाँ सभी देवगण, दक्ष के यहाँ दिव्य आनंद में मग्न थे। शिव कैलाश पर मौन भाव से ध्यान रमाए बैठे थे। यह सती को अच्छा नहीं लगा।

सती ने तनिक संकोच से पूछा, “मेरे प्रभु! क्या हमें मेरे पिता के यज्ञ में शामिल होने नहीं जाना चाहिए?” हालांकि वे जानती थीं कि शिव हर बात को गहराई से जानते थे।

“नहीं सती!” शिव ने अपने एक गंभीर स्वर में कहा जैसे कि गंगा उनकी उलझी जटाओं से

हो कर बह रही हो, “एक सम्मानित व्यक्ति को कहीं भी बिना आमंत्रण के नहीं जाना चाहिए।”

“परंतु, वे तो मेरे पिता हैं, प्रभु!” उन्होंने धीरे से कहा। “वे हमें आमंत्रित करना भूल गए होंगे।”

शिव ने स्नेह से कहा, “हे भद्रे, तुम्हारे पिता शिव को पसंद नहीं करते क्योंकि शिव सर्व श्रेष्ठ हैं तथा किसी भी परंपरा से परे हैं।”

सती ने एक बार फिर से जोर दे कर कहा, “कृपया, क्या हम जा सकते हैं, मुझे अपने परिवार से भेंट किए कई सदियाँ बीत गई हैं।”

“सती, यदि तुम जाना चाहती हो तो जाओ, शिव नहीं जाएँगे।” इस प्रकार उन्होंने अपने नेत्र मूँदे और पुनः ध्यानमग्न हो गए।

सती अपनी इस इच्छा को दबा नहीं सकीं, उन्होंने जाने के लिए अपने सबसे सुंदर रेशमी वस्त्र धारण किए और सबसे बहुमूल्य आभूषण पहन कर, शिव के गणों को बुलाया, जिन्होंने तुरंत उनके लिए उड़ने वाले रथ की व्यवस्था कर दी।

कई मील की दूरी से भी सती वायु में व्याप्त सुगंधि को अनुभव कर सकती थीं। उन्हें मंत्रजाप, शंख, वीणा तथा मृदंगों के स्वर सुनाई दे रहे थे। उन्हें अभी से शिव की याद सताने लगी थी परंतु वे यह भी जानती थीं कि शिव ने वही किया, जो उन्हें करना चाहिए था। जब वे यज्ञशाला के निकट पहुँचीं तो भव्यता की सराहना किए बिना नहीं रह पाईं। ऐसा दृश्य तो जैसे उन्होंने पहले कभी देखा ही नहीं था।

जब वे रथ से उतरीं तो, सैंकड़ों दासियाँ उनकी ओर लपकीं, उनकी सती आई थी, जो एक समय पर उनकी राजकुमारी थी। उन्होंने सती को ऐसे पुष्पों की मालाएँ पहनाईं, जो कभी मलिन नहीं होती थी। उन्होंने सती के मार्ग में गुलाब की पंखुड़ियों तथा कमलों की वर्षा की। कुछ हिमालय के राजहंसों के पंखों से बने चवर डुलाने लगीं, कुछ दासियों ने उन्हें पान-सुपारी पेश किया, कुछ इत्र छिड़कने लगीं। जब सती आगे बढ़ीं तो बड़े-बड़े शंख फूँके गए और गंधर्वों ने उनके स्वागत में गायन प्रस्तुत किया।

सती अपनी माताओं और बहनों को खोजते हुए यहाँ-वहाँ घूमने लगीं। उन्होंने देखा कि देवों व तथा उनकी पत्नियों के लिए बहुत आलीशान आसन रखे गए थे। वे बड़ी व्यग्रता तथा कौतूहल के साथ शिव के आसन की खोज करने लगीं किंतु वहाँ शिव के लिए स्थान ही नहीं था। उनका हृदय दुःख से डूब गया।

उन्होंने सोचा, “क्या ऐसा अनजाने में हुआ होगा?” उन्हें इस बात से सांत्वना मिली कि शिव उनके साथ नहीं थे अन्यथा उनके रोष से सब कुछ क्षण भर में नष्ट हो जाता।

इस दौरान, रानी प्रसूति ने सती को देख लिया और वे अपनी पुत्री की ओर दौड़ीं। उन्हें अपनी चौबीस पुत्रियों में से, सती से सबसे अधिक स्नेह था क्योंकि वे जानती थीं कि सती कोई और नहीं, स्वयं आदि शक्ति का अवतार थीं। दक्ष ने प्रसूति को बीच राह में ही रोक लिया तथा सती का स्वागत करने से मना कर दिया। सती अपने पिता के ऐसे व्यवहार को देख स्तब्ध हो उठीं, फिर भी वे उनके चरण स्पर्श करने के लिए झुकीं। परंतु वे पीछे हट गए।

अचानक संगीत बजना बंद हो गया और वहाँ पर उपस्थित सभी लोग दक्ष की ओर देखने

लगे जो कि बहुत कठोर अहं भाव से, भुजाओं को पीछे करके और पैरों को थोड़ा खोल कर खड़ा था। कुछ क्षण के लिए, वे मौन रहे। जब सती को लगा कि उनके पिता बोलने की पहल नहीं करेंगे, तो वे बोलीं:

"पिता जी, मुझे कहाँ स्थान ग्रहण करना है? मुझे शिव तथा अपने लिए कोई स्थान या आसन दिखाई नहीं दे रहा।"

दक्ष उपहास करते हुए बोले, "उस भिक्षुक के लिए स्थान? यह एक शाही उत्सव है, भिखारियों और साधुओं के लिए भोज का आयोजन नहीं किया गया।"

"पिता जी" सती तेज़ स्वर में बोलीं।

"तुमने यह सोचा भी कैसे कि मैं शिव जैसे अघोरी को यहाँ आने का न्यौता दूँगा?" दक्ष ने विषवमन करना जारी रखा, "जिस दिन तुमने उस नग्न, भस्म में लिपटे विचित्र व्यक्ति से विवाह किया था, मैंने उसी दिन तुम्हारा परित्याग कर दिया था। केवल उसके जैसा रंक ही अपनी पत्नी को बिना आमंत्रण के, किसी के यहाँ भेज सकता था।"

"पिता जी!" सती चिल्लाईं। "शिव देवों के भी देव हैं।"

"मेरी बला से," दक्ष चिल्लाए, "वह तो अपने जंग खाए त्रिशूल के साथ मेरे अस्तबल का प्रहरी बनने के योग्य भी नहीं है। वह विकृत, अधनंगे, भूत, प्रेतों तथा शमशानवासियों का ही चहेता है।"

सती ने अपने गुलाबी व कोमल हाथों से, आभूषणमंडित कान ढाँप लिए। उनका चंद्रमा के समान गौरमुख रक्तिम हो उठा और आँखों से अश्रु धारा प्रवाहित होने लगी। सती ने एक सच्ची पतिव्रता की तरह, केवल एक ही व्यक्ति से प्रेम किया था, और वे शिव थे। आदि शक्ति की अवतार, स्वयं परम ऊर्जा, सती अच्छी तरह जानती थीं कि शिव त्रिलोक के स्वामी थे, एक शाश्वत आदि योगी, जो विनाश और नश्वरता से परे थे। शिव के लिए ऐसे कठोर वचन सुन कर वे अपराध बोध से भर गईं, उन्हें लगा कि उनके हाथों उनका पतिव्रत धर्म खंडित हो गया है।

उसी एक क्षण में सती को एहसास हुआ कि सर्वज्ञानी शिव ने उन्हें यज्ञ में शामिल होने से क्यों रोका था। शिव के साथ अपने वार्तालाप को स्मरण करते हुए, उन्हें पति की बात न मानने का पश्चाताप होने लगा। उन्हें लगा कि उन्होंने शिव का अपमान किया था और उनके दिल को ठेस देने के बाद, सती को जीवित रहने का कोई अधिकार नहीं रह गया था।

"दक्ष!" सती की आँखें अंगारे उगल रही थीं। वैदिक मंत्रजाप बंद हो गए थे और सती की पुकार से सारा ग्रह थरथरा उठा। "किसी भी लोक में आज तक, किसी ने भी शिव के लिए इस तरह बात करने का साहस नहीं किया। मुझ पर धिक्कार है कि मैंने उनके बारे में ऐसे अपमानजनक शब्द सुने। दक्ष, तुम्हें इसका दंड भुगतना होगा।"

और उसी एक क्षण में, सती ने अपनी योग शक्ति के बल पर, अपने शरीर को भस्म के ढेर में बदल दिया। देवगण काँप उठे। दंभी दक्ष भी भयभीत तो हुआ परंतु उसने अपना भय प्रकट नहीं होने दिया।

बृहस्पति बोले, "दक्ष! आज तक तुमने जो भी जाना, अब उस सबका अंत हो जाएगा।"

"हुँह! एक व्यक्ति की सेना मेरा क्या बिगाड़ लेगी? मैं तो—।"

बृहस्पति ने अपने हाथ के संकेत से दक्ष को सावधान रहने को कहा क्योंकि वे शिव के विषय में एक भी निंदाजनक वाक्य नहीं सुनना चाहते थे, वे शिव की अनुकंपा से ही तो सबसे बुद्धिमान, बृहस्पति के पद तक पहुँचे थे।

सती के साथ जो गण आए थे, वे झट प्रकाश की गति से कैलाश रवाना हो गए और भगवान महादेव की स्तुति करके उन्हें ध्यानावस्था से बाहर ले आए। शिव ने कोमलता से अपने विशाल नेत्र खोले। गणों ने उन्हें दंडवत प्रणाम किया और भय से थर्राते हुए, दक्ष के यज्ञस्थल पर हुई घटना का वर्णन किया।

शिव क्रोध से अपने स्थान से उठ खड़े हुए। उनका दाँया हाथ अपने शीश तक गया, उन्होंने अपनी जटाओं से एक लट उखाड़ कर, उसे धरती पर पटक दिया। ज्यों ही लट धरती पर गिरी, उससे एक विशालकाय जीव सामने आ खड़ा हुआ। वह शिव का एक भयंकर गण, वीरभद्र था। कोयले के समान काले वीरभद्र की आठ भुजाएँ थीं, जिनमें से प्रत्येक में शस्त्र पकड़ा हुआ था। शिव ने उसी भाव में, अपनी एक और लट उखाड़ कर धरती पर फेंकी। इस बार भद्रकाली प्रकट हुई, जो देवी का भयंकर और आतंकी रूप माना जाता है। अमावस्या की रात्रि के समान काली, भद्रकाली की अठारह भुजाएँ थीं जिनमें शंख, चक्र, कमल, गदा, त्रिशूल, भाला, कृपाण, खड्ग, वज्र, राक्षस का कटा शीश, प्याला, अंकुश, जलपात्र, बड़ा चाकू, ढाल, धनुष और बाण थामे हुए थे।

शिव ने दक्ष के यज्ञस्थल की दिशा की ओर संकेत करते हुए आदेश दिया, "सर्वनाश!"

उन्होंने अपना डमरु उठाया और उसे ज़ोर-ज़ोर से बजाने लगे। पक्षी घोंसलों में जा छिपे, बत्तखों तथा गौओं के गर्भ गिर गए, वृक्ष उखड गए, सागरों का जल उमड़ पड़ा और डमरु की प्रत्येक थाप के साथ असंख्य ऊर्जाएँ प्रकट होने लगीं। भद्रकाली के अठ्ठहास से पर्वतों के खंड हो गए और ग्लेशियर टूट गए। महा देवी की आठ सहायक शक्तियाँ युद्ध में उनका साथ देने आ गईं। वे थीं — काली, कात्यायनी, चामुंडई, ईशानी, मुंडमर्दिनी, भद्रा, वैष्णवी व त्वरिता।

भगवान शिव ने नटराज स्वरूप धारण कर विनाश का तांडव नृत्य करना आरंभ कर दिया, और जल्दी ही, असंख्य गणों ने भयंकर और विनाशकारी रूप धर लिए।

"हर हर महादेव!" वे एक साथ गरजे।

वीरभद्र तथा भद्रकाली, गणों सहित, दक्ष के यज्ञस्थल पर जा पहुँचे और अपने मार्ग में आने वाली हर वस्तु तथा व्यक्ति का नाश कर दिया। अनेक देव भाग खड़े हुए और कईयों ने छिप कर अपनी प्राण रक्षा की। कुछ ने संघर्ष करना चाहा परंतु वे एक क्षण के करोड़वें हिस्से तक भी, उन गणों का सामना नहीं कर सके। शेष देवगण जानते थे कि यह निरर्थक था, शिव का सामना करना किसी के वश में नहीं था, भले ही वे प्रजापति दक्ष का साथ देना चाहें पर वे कुछ नहीं कर सकते थे। शिव के गणों व प्रेतों ने सर्वनाश को इस तरह जारी रखा जैसे जंगली हाथी, बगिया में लगे पुष्पों को रौंद कर नष्ट कर देते हैं। वे देवों को नहीं, दक्ष को मारना चाहते थे। दक्ष के अपमानजनक व्यवहार ने ही शिव और सती को कुपित कर दिया था। दक्ष के अहंकार ने उनसे उनकी पूजनीया देवी को छीन लिया था।

वीरभद्र ने दक्ष को खोज निकाला, जो अपनी सेनाओं को आक्रमण करने का आदेश दे रहा था। एक लंबी छलांग में, वीरभद्र उस तक जा पहुँचा। उसके सामने जाते ही, मुँह से एक शब्द

कहे बिना या किसी चेतावनी के बिना ही, शिव के आदेश का पालन करते हुए, एक ही झटके में दक्ष का संहार कर दिया। परंतु गणों ने सर्वनाश जारी रखा।

देव भयभीत थे कि कहीं यह समय का अंत तो नहीं था, वे अपने परिजनों सहित शिव के पास गए और उनकी करुणा और दयालुता का गुणगान करने लगे। इसी बीच कुछ ही क्षण बाद, धरती के कुछ हज़ार वर्ष व्यतीत होने वाले थे, शिव शांत हो गए परंतु उन्होंने किसी से बात नहीं की। वीरभद्र, भद्रकाली, अन्य देवियाँ व गण शिव में आ कर लीन हो गए और वे वहाँ शांत भाव से बैठे रहे।

देव जानते थे कि केवल शिव ही प्रकृति में संतुलन पैदा कर सकते थे और उन्हें ध्यान की अवस्था में जाने से पहले यह करना ही होगा क्योंकि शिव का ध्यान कई हज़ार वर्ष तक चल सकता था। उन्होंने उनसे आग्रह किया कि वे दक्ष को क्षमा कर दें। उनके कहने पर, शिव यज्ञस्थल पर पहुँचे।

वह स्थल एक रक्तस्नात युद्धक्षेत्र में बदल गया था। असंख्य देव, उनके परिचारक, अश्व, हाथी आदि मृतक हो चुके थे। रानी प्रसूति शिव के चरणों में गिर कर क्षमायाचना करने लगीं कि उनके पति को जीवनदान दिया जाए। शिव ने उन्हें उठा लिया, जो भी हो, वे सती की माता थीं। उन्होंने यहाँ-वहाँ देखा तो एक स्थान पर दक्ष का कुचला व कटा हुआ शीश दिखा; वीरभद्र ने उसे पैरों से कुचल दिया था। केवल उसके समीप पड़े मुकुट से ही पता चल रहा था कि वह दक्ष का शीश था।

शिव ने एक बलिकर्म के लिए प्रयुक्त बकरे का सिर लिया और उसे दक्ष के धड़ पर लगा कर, उसे जीवनदान दिया। उन्होंने अपनी देह पर हाथ मल कर थोड़ी भस्म उतारी और उसे हवा में उड़ा दिया। सती को छोड़ कर, सभी मृतक पुनः जीवित हो उठे। शिव जानते थे कि सती उनके लिए पुनः शुद्ध होना चाहती थीं क्योंकि उन्हें लगा था कि पति से बहस करके, उन्होंने सर्वज्ञ शिव के प्रति अपने पतिव्रत धर्म का पालन नहीं किया था। वे जानते थे कि अभी सती को पार्वती के रूप में पुनः जन्म लेने के लिए कुछ हज़ार वर्ष का समय लगेगा और गहन तपस्या के बाद ही सती फिर से उनकी पत्नी बन सकेंगी।

शिव कैलाश पर लौट गए, अपनी यौगिक मुद्रा में आने के बाद, वे गहन ध्यान में खो गए। वे अपनी ध्यानमग्न अवस्था को उस बिंदु तक ले गए, जहाँ से कोई वापसी नहीं होती।

## पार्वती का जन्म

समय बीतने लगा, तारकासुर नामक राक्षस ने देवलोक को जीता तथा अन्य सभी लोकों को भी अपने अधिकार में ले लिया। तारकासुर बहुत ही शक्तिशाली तथा अजेय था। उसने हज़ारों वर्षों तक ऐसी कड़ी तपस्या की थी कि ब्रह्मा को उसके आगे प्रकट होना ही पड़ा। दक्ष के यज्ञ का विध्वंस हो चुका था। तारकासुर जानता था कि सती अपने प्राण दे चुकी थीं और शिव उनके अतिरिक्त किसी को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकार नहीं करेंगे। उसने ब्रह्मा जी से वरदान माँगा कि उसकी मृत्यु शिव जी के पुत्र के अतिरिक्त किसी के हाथों न हो सके।

महादेवी का सती का जन्म, हिमालय के राजा हिमवान तथा उनकी रानी व स्वर्गीय अप्सरा

मेना के यहाँ पार्वती के रूप में हुआ। पार्वती ने गहन तपस्या के बाद शिव को पति के रूप में पाया। हिमवान दक्ष की तरह नहीं थे, वे बहुत ही विनीत और न्यायी शासक थे। उन्होंने पूरे हृदय से अपनी पुत्री के चुनाव को स्वीकारा। जब शिव ने पार्वती को अपनी पत्नी के रूप में स्वीकारा, तो योगी पुनः अपनी ध्यानावस्था में लौट गए।

देव बहुत त्रास में थे। वे चाहते थे कि शिव और पार्वती के संयोग से उत्पन्न पुत्र, तारकासुर का वध कर, उनके दुखों का अंत करे। परंतु शिव को उनके ध्यान से कौन जगा सकता था? वे घुटनों के बल जा कर बैठे और पार्वती से आग्रह किया कि शिव के ध्यान को भंग करते हुए, उन्हें सहज व सामान्य अवस्था में ले कर आएँ। जब पार्वती ने इसका कारण जाना तो वे लजा कर बोलीं कि कोई भी पतिव्रता स्त्री, संभोग के लिए अपने पति का ध्यान नहीं भंग करेगी। इसके अतिरिक्त, उन्हें यह भी पता था कि यदि शिव को यह उचित लगता तो उन्होंने बहुत पहले ही ऐसा कर लिया होता।

उन्होंने परामर्श दिया, "उनकी आराधना करें। वही आपके मन में विजयी होने के लिए समुचित विचार उत्पन्न करेंगे।"

देवों ने ऐसा ही किया, परंतु कुछ समय बाद उनके मन में एक विचार आया। उन्होंने प्रेम के देवता मन्मथ को शिव के पास भेजा जिसने शिव में इच्छा जागृत करने के लिए, उन पर पाँच प्रेम बाण चलाए। जब वे बाण शिव को लगे तो वे अप्रसन्न हो उठे। उन्होंने अपना तीसरा नेत्र खोला और मन्मथ वहीं भस्म हो गया। अचानक, सारे संसार में निर्जनता छा गई। प्रेम नीरव हो उठा क्योंकि कोई भी स्त्री या पुरुष एक-दूसरे को छूना ही नहीं चाहता था। पक्षियों तथा पशुओं की संतानें उत्पन्न होनी बंद हो गईं क्योंकि मन्मथ के अभाव में, उनके भीतर से वासना और इच्छा ही समाप्त हो गई थी।

देवगण मन्मथ की पत्नी रति के साथ शिव के पास गए और उनसे आग्रह किया कि वे उसे पुनः जीवित कर दें। मन्मथ तो भस्म हो चुका था। शिव जी ने वरदान दिया कि मन्मथ को पुनः जीवित नहीं किया जा सकता था इसलिए, अब वह सभी सजीव प्राणियों के भीतर, बिना देह के वास करेगा और अनगं कहलाएगा। इस तरह वह उनके भीतर इच्छा को जीवित रखेगा। रति ने शिव से आग्रह कि वे मन्मथ की देह भस्म पर कम से कम एक यौगिक दृष्टि तो डालें ताकि उसे वहाँ से ले जाया जा सके।

शिव ऐसा करना नहीं चाहते थे पर रति अपने हठ पर अड़ी रही। ज्यों ही उन्होंने राख के ढेर पर नज़र डाली, उसमें एक आकार पैदा हो गया। वह भांडासुर नामक राक्षस था जिसने शोणितपुर को अपना आवास बनाया। उसने देवों पर अत्याचार करना आरंभ कर दिया। देव त्राहि-त्राहि कर उठे और नारद मुनि की शरण ली जिसने उन्हें यज्ञ करने का परामर्श दिया।

मुनि बोले, "यह सब एक यज्ञ से ही आरंभ हुआ था और यह वहीं समाप्त होगा। अब केवल परम देवी ही सहायक हो सकती हैं।"

देवों ने एक भव्य यज्ञ का आयोजन किया और यज्ञ की अग्नि से महा त्रिपुर सुंदरी के रूप में देवी प्रकट हुईं। वह एक अद्‌भुत रूप था: गौर वर्ण, चारभुजाधारी, सुगंधियुक्त, सुंदर, मनमोहक तथा करुणामयी, यद्यपि उनके हाथ में मन्मथ के पाँच शर, एक अंकुश, धनुष व एक बाण भी था।

देव नहीं जानते थे कि उन्हें प्रसन्न कैसे करना है। उन्होंने अपनी अज्ञानता स्वीकार करते हुए, देवी से आग्रह किया कि वे ही अपने स्वागत का तरीका बताएँ। देवी माता ने अपनी आठ सखी ऊर्जाओं को बुलाया जिन्हें वाग्देवियाँ कहा जाता था। वे वही थीं जो भद्रकाली के समय में भी प्रकट हुई थीं। वे देवी के विविध स्वरूपों की साक्षी रही थीं।

वाग्देवियाँ, देवी को उनके एक हज़ार नामों के साथ संबोधित करते हुए, उनकी स्तुति करने लगीं। जिन्हें ललिता सहस्रनाम के नाम से जाना जाता है। उन्होंने सुमधुर स्वर में, आदर भाव के साथ अपनी स्तुति आरंभ की :

"ओम् श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिन्हासन्एश्वरी,
चिदग्निकुण्डसम्भूता द्एवकार्य समुदयता."

(ललिता सहस्रनाम, 1)

हे देवी, पवित्र माता, आप ही अनंत शरणस्थली हैं, जिनसे आश्रय पाने की हम कामना करते हैं। आप सारे जगत की महारानी हैं, जो पूरी भव्यता के साथ अपने सिंहासन पर विराजमान हैं। हे माता, आप व्यक्ति के मस्तिष्क की शुद्धतारूपी अग्नि से उत्पन्न कल्याणकारी इच्छाओं की पूर्ति के लिए ही प्रकट हुई हैं।

आठों वाग्देवियाँ देवी की स्तुति करती रहीं। और यहीं, ललिता सहस्रनाम में, पहली बार कुंडलिनी तथा चक्रों का वर्णन आता है। सभी ग्रंथों, टीकाओं व संहिताओं से पूर्व, यहीं सबसे पहले कुंडलिनी की चर्चा करते हुए, उसे मूल ऊर्जा, देवी के सौम्य निराकार पक्ष के रूप में प्रकट किया गया है।

मैं अपने शब्दों को पराग की तरह यहाँ-वहाँ बिखरने नहीं दूँगा, और न ही मेरे वाक्य दिशाहीन खरपतवार की तरह उगेंगे। मैंने पूरी सावधानी, सजगता व सतर्कता के साथ, आपको कुंडलिनी की पृष्ठभूमि की कथा से अवगत कराया क्योंकि दक्ष के यज्ञ से ले कर देवी के प्रकट होने के बीच ही, चक्रों की साधना का रहस्य छिपा है।

चक्रों पर ऐसी कोई सामग्री नहीं बची, जिसका मैंने अध्ययन न किया हो। यदि आप केवल शब्दों की व्याख्या में रुचि रखते हैं, तो आप उन्हें पढ़ कर बहुत सारी जानकारी बटोर सकते हैं। इस प्रकार समकालीन पाठ्यों तथा सैद्धांतिक जानकारी देने वाले ज्ञान की उपेक्षा करते हुए, मैंने इस पूरे ग्रंथ को केवल ललिता सहस्रनाम पर ही आधारित किया है क्योंकि इस उपाख्यान में कुंडलिनी साधना की सभी बाधाएँ तथा मील के पत्थर उसी तरह समाए हैं, जिस तरह दूध में मक्खन छिपा रहता है।

इस पुस्तक में मेरे शब्द, केवल उनके लिए हैं, जो केवल पढ़ने में रुचि नहीं रखते परंतु वास्तव में, स्वयं कुंडलिनी का अनुभव पाना चाहते हैं।

जहाँ तक मेरा प्रश्न है, मैंने दो दशकों से भी अधिक समय तक, देवी के साकार और निराकार रूपों को पूजा है। मैंने वैदिक और तांत्रिक रूप से उनका स्मरण किया है। मैंने उन्हें

देखा है, मैं उनसे एकरूप हुआ हूँ, उन्हें अपने अस्तित्व के रोम-रोम में पाया है। हिमालय के वनों में, शमशान घाटों में, गुफा-कंदराओं में, वृक्षों के नीचे तथा निर्जन स्थानों पर, मैं उनकी ममतामयी गोद में खेला हूँ, मैंने उनके युवारूप के साथ मनोरंजन किया है। यदि आपको ऐसा होने में संदेह है तो मैं आपको परामर्श दूँगा कि आप इस पुस्तक को पढ़ना छोड़ें और कुछ ऐसा पढ़ें जिस पर आप विश्वास कर सकें, हो सकता है कि आज का समाचार पत्र या फिर कुछ ऐसा जिसे आपका सजग मन स्वीकार कर सके, समझ सके।

यह कार्य मेरे प्रत्यक्ष अनुभवों पर आधारित है और मैं आपके आगे चक्रों का सत्य ज्यों का ज्यों रख रहा हूँ, इसमें कहीं कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

विष्णु के एक रूप, अश्व के शीश वाले हूयग्रीव भगवान ने ललिता सहस्रनाम का ज्ञान मुनि अगस्त्य को सौंपा ताकि इस ग्रह पर तथा अन्य समानांतर ग्रहों पर मानव जाति का कल्याण हो सके। तो, आपको इस पुस्तक में जो भी मिलेगा, वह सीधा अश्व के मुख से आप तक आया है, आप मेरा भावार्थ समझ रहे हैं, न?

देवी की महिमा अक्षुण्ण रहे!

# पहला साधक

असीम उत्साह व आदर भाव सहित, भगवान ह्यग्रीव ने, ललिता सहस्रमान के रूप में देवी की महिमा का वर्णन आरंभ किया। महान ऋषि अगस्त्य भक्ति भाव से विगलित होते हुए, अपने ही अश्रुओं से भीग गए। उन्होंने प्रभु का आशीर्वाद चाहा ताकि वे गहन तपस्या करते हुए, देवी के दिव्य स्वरूप को अनंत काल तक अपनी स्मृति में बनाए रख सकें।

"तथास्तु!" ह्यग्रीव बोले तथा उन्हें देवी के सहस्र नामों को जपने का विशेष अधिकार प्रदान किया। ऋषि अगस्त्य को सर्वप्रथम ललिता सहस्रनाम जप के लिए दीक्षा प्रदान की गई। वे जानते थे कि दीक्षा के अभाव में, वे एक बीजरहित फल के समान थे — संपूर्ण किंतु भावी विकास से रहित!

अगस्त्य ने पूरी निष्ठा व आभार सहित अपने गुरु ह्यग्रीव के आगे मस्तक टेका।

"परंतु," ह्यग्रीव ने चेतावनी देते हुए कहा, "देवी की साधना तंत्र के बिना अपूर्ण है और केवल शिव ही तुम्हें इस गुप्त विद्या का ज्ञान दे सकते हैं।"

उन्होंने अगस्त्य को निर्देश दिए कि वे परम देवी के एक हज़ार नामों पर ध्यान रमाएँ, हर नाम पर छह माह, एक अयान तक ध्यान करें और इस प्रकार पाँच हज़ार वर्ष की अवधि में उनकी साधना पूरी होगी। उन्होंने कहा कि इतनी गहन साधना के बाद ही, शिव उन्हें देवी की पूर्ण साधना करने का अवसर प्रदान करेंगे।

अगस्त्य उत्सुक तो थे परंतु वे यह भी जानते थे कि प्रकृति की हर वस्तु के समान, साधना भी एक जैविक प्रक्रिया है। यह अपने ही समय पर परिपक्व होती है। इसे पूरा करने के लिए शीघ्रता नहीं करनी चाहिए। उन्होंने प्रभु की पदधूलि ली; उसमें से कुछ को अपनी जटाओं पर छिड़कते हुए, शेष को माथे पर मल लिया।

अगस्त्य पूरी एकाग्रता के साथ देवी की साधना करने लगे। जब भी उन्हें देवी के नामों की सत्यता का अनुभव मिलता, तो उनके नेत्रों से अश्रु की धारा प्रवाहित हो उठती। कई बार वे, विक्षिप्तों की तरह हँसने लगते, और कई बार, वे वन्य पशुओं व वृक्षों को आलिंगन में भर लेते क्योंकि उन्हें हर स्थान व हर वस्तु में देवी ही दिखाई देती थीं। वे देवी के दिव्य नामों पर जितना तप कर रहे थे, उतना ही उनके हृदय में देवी के लिए आदर भाव बढ़ता जा रहा था।

जाने कितनी ऋतुएँ आईं व चली गईं, नन्हे बीज विशाल वृक्षों में बदल गए, सूर्य ने पाँच हज़ार बार उत्तरायण से दक्षिणायन की यात्रा कर ली। अगस्त्य ने देवी के सहस्र नामों की साधना पूरी की और गहन मनन में डूब गए।

वीणा की माधुरी के बाद, किसी ने सुरीले कंठ से पुकारा, "हे सिद्ध पुरुष, "स्वात्मानंद-लवीभूता-ब्रह्माद्यानन्दा-संतति," अगस्त्य ने बड़े ही भक्तिभाव से देवी के एक नाम का जप करते हुए नेत्र खोले, वे दिव्य स्नेह से आपूरित थीं "हे नारद! अपनी आत्मा के भीतर देवी को पा लेने का परमानंद तो ब्रह्मा भी कभी नहीं पा सकते। सूर्य के आगे सारे आनंद तो जुगनू के समान हैं।"

फिर उन्होंने दोनों हाथ जोड़ कर विचरण करने वाले संत को प्रणाम किया और बोले, "मुझे साधना के अंत में, आपके दर्शन करने का सौभाग्य मिला। मैं धन्य हो गया।"

नारद बोले, "नारायण! नारायण। मुनि! अभी आपकी साधना पूरी नहीं हुई। यह तो अभी

केवल आरंभ हुई है।"

अगस्त्य बोले, "हे श्रेष्ठ संत! यह पात्र अब छिन्न-भिन्न हो गया है। अब मैं इसे अग्नि के माध्यम से देवी को अर्पित कर देना चाहता हूँ।"

नारद हँसे और उन्हें भगवान ह्यग्रीव के निर्देशों का स्मरण करवाते हुए बोले, "नारायण! नारायण!"

ह्यग्रीव के कहे अनुसार ही, अगस्त्य शिव के पास गए और दंडवत किया। शिव के उज्ज्वल और दैदीप्यमान मुख, स्थिर नेत्रों, हिमालय के नालों की तरह प्रवाहित हो रही जटाओं को देखते ही अगस्त्य अपने बूढ़े शरीर के बारे में सब भूल गए। वे एक नए जोश, ऊर्जा व भक्ति-भाव से संपन्न हो उठे।

गौरवर्णा पार्वती शिव के निकट आ विराजीं। अगस्त्य पुकार उठे, "देवी, हे देवी, अपने अगस्त्य को आशीर्वाद दीजिए, देवी।" जब वे अपने ही अश्रुओं की धार में नहाए, किसी बालक की तरह फूट-फूट कर रोते हुए देवी के चरण स्पर्श करने के लिए आगे गए तो उसी क्षण में देवी शिव में अंतर्ध्यान हो गईं। अगस्त्य अवाक् रह गए।

उन्होंने व्यग्र भाव से पूछा, "महादेव! मेरे भक्ति-भाव में क्या कमी रह गई? देवी अलोप क्यों हो गईं?"

शिव अपने गहन-गंभीर स्वर में बोले, मानो किसी हिमालय की सुरंग में कोई वायु प्रवाहित हो रही हो, "देवी तो लोप अलोप से परे हैं, हे मुनि। तुमने अब तक देवी के सार को नहीं पहचाना, परंतु तुम्हारी निष्ठा व एकाग्रता से मैं प्रसन्न हुआ। अब समय आ गया है कि मैं तुम्हें वे रहस्य सौंप दूँ।"

शिव ने तंत्र के वाम व दक्षिण भाग में, देवी पूजन के साकार व निराकार रूपों का सारा रहस्यमय ज्ञान उन्हें सौंप दिया।

"आज से कुछ हज़ार वर्ष बाद, धरती पर एक अटल व संकल्पबद्ध मुनि धरती पर देवी की साधना पूण करेगा।" शिव ने और कुछ कहे बिना, अपने रहस्यमयी अंदाज़ में कहा।

अगस्त्य ने हज़ार वर्ष तक गहन तपस्या की किंतु दक्षिणी पंथ के अभ्यासों को ही पूरा कर सके। वे पुनः शिव के पास गए।

"मैं आपकी तरह नहीं, महादेव! मेरा शरीर प्रकृति के नियमों के अधीन है। मैं इस देह को त्याग कर नई देह धारण कर सकता हूँ किंतु वह समय के धर्म के विरूद्ध होगा। हे प्रभु! मेरे लिए क्या आदेश है?"

"जाओ, यह सारा ज्ञान धरती पर दत्तात्रेय को सौंप दो और वे इसे परशुराम और वशिष्ठ को देंगे।"

अगस्त्य के मन में संदेह का छींटा आ गया। शिव ऐसी भूल कैसे कर सकते थे। उन्होंने तो स्वयं कहा था कि देवी की साधना कुछ हज़ार वर्षों में पूरी होगी जबकि अभी तो हज़ार वर्ष ही हुए थे। वे जानते थे कि तीनों — दत्तात्रेय, परशुराम और वशिष्ठ साधना को पूरा कर सकते थे।

शिव मुस्कुराए किंतु कुछ नहीं कहा। अगस्त्य ने निर्देश के अनुसार यह गुप्त ज्ञान दत्तात्रेय व वशिष्ठ को सौंप दिया और अपनी देह को देवी भाव में त्याग दिया।

दत्तात्रेय का जन्म, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के तीन अंशों से, महा मुनि अत्रि तथा उनकी पत्नी अनुसूया के यहाँ हुआ, जो अपने पतिव्रत धर्म के लिए जानी जाती थीं। दत्तात्रेय ने अपना सारा ज्ञान परशुराम को दिया परंतु ज्यों ही साधना पूरी हुई, उनके मन में महान वैराग्य उत्पन्न हो गया और उन्होंने विवाह नहीं किया।

परशुराम अपने गुरु के प्रति समर्पित रहे और कभी किसी स्त्री को संगिनी नहीं बनाया। संगिनी के साथ तांत्रिक पूजन किए बिना, साधना पूरी नहीं हो सकती थी। दत्तात्रेय जानते थे कि परशुराम केवल एक ऋषि नहीं बल्कि स्वयं एक दिव्य अवतार थे। उन्होंने उन्हें देवी की साधना पूरी करने के भार से मुक्त कर दिया।

परशुराम, धरती पर विष्णु के अवतार थे,जिन्होंने धरती से अत्याचारी क्षत्रियों का समूल नाश करने का संकल्प लिया था। शस्त्रों के गुप्त विज्ञान के अतिरिक्त, जो परशुराम कुछ हज़ार वर्ष बाद द्रोण, भीष्म और कर्ण को देने वाले थे, उन्होंने देवी की यह गुप्त विद्या किसी को नहीं दी। वशिष्ठ ही एकमात्र आस थे।

यह कोई रहस्य नहीं कि शिव स्वयं को कभी नहीं दोहराते और न ही किसी विद्या को दूसरी बार देते हैं। दत्तात्रेय इसे अपने किसी शिष्य को नहीं देने वाले थे और यदि वशिष्ठ भी इसे न देते, तो जगत सदा के लिए देवी की कृपा से वंचित रह जाता।

महान ऋषि वशिष्ठ उतने ही प्राचीन माने जाते थे, जितना धरती के सौर मंडल में सूर्य पुराना था। उन्होंने राजाओं का उत्थान व पतन देखा था। उन्होंने युगों को बदलते हुए देखा था। वे तीनों लोकों तथा अस्तित्व के चौदह तलों की यात्रा कर चुके थे। उन्होंने विश्वामित्र को ब्रह्मर्षि बनते देखा था। वे अधीर और उत्सुक प्रवृति के नहीं थे।

महान वशिष्ठ ने अपनी दिव्य दृष्टि से देखा कि अभी धरती पर, उनके सहित, किसी के लिए भी सही समय नहीं आया था कि वह देवी की साधना करे, जिसे शिव द्वारा प्रदान किया गया था। उन्होंने यह देखा कि वह साधना कितनी समर्थवान थी और गलत हाथों में जाने से उसका कैसे दुरुपयोग हो सकता था। यहाँ तक कि उनका अपना पुत्र, शक्ति मुनि भी देवी की साधना करने के योग्य नहीं था। उन्होंने देवी की साधना को अपने हृदय में छिपाए रखा और उसे सबसे पहले, अपने पौत्र ऋषि पराशर को सौंपा, जो सभी इच्छाओं से परे थे। ज्यों ही वशिष्ठ उन्हें साधना देने के बाद निवृत हुए तो मृदुभाषी ऋषि पराशर के भीतर सांसारिक जगत की व्यर्थता के प्रति जागरूकता उत्पन्न हुई।

इस अनुभवातीत ज्ञान से संपन्न होने के बाद, ऋषि पराशर संसार से विरक्त होने लगे। वे अपने पिता, पितामह या उस युग के अन्य मुनियों की तरह नहीं थे; उन्होंने न तो कभी विवाह किया और न ही कभी किसी संगिनी का साथ पाया। वे देवी की साधना का ज्ञान पाने के बाद, अपना अधिकतर समय हिमालय में ही व्यतीत करने लगे।

हालांकि महा देवी की साधना को संगिनी के अभाव में पूरा नहीं किया जा सकता था। देवी भाव में विलीन ऋषि पराशर किसी भी स्त्री की ओर अनुरक्त नहीं हो पाते थे। वे इस विषय का ज्ञान रखते थे कि उन्हें अपना ज्ञान किसी उत्तराधिकारी को सौंपना ही होगा किंतु इसके बावजूद वे किसी सुयोग्य पात्र की प्रतीक्षा किए बिना, अपना अधिकतर समय ध्यान में ही बिताते रहे।

इसी तरह कुछ दशक बीते और ऋषि पराशर को लगा कि अब उत्तराधिकार के इस विषय

को और अधिक स्थगित नहीं किया जा सकता था। मन में यह सोच आते ही, वे हिमालय से नीचे उतर आए। एक दिन, उन्हें यमुना नदी के पार जाना था और केवट अपना भोजन कर रहा था। उसने अपनी पुत्री मत्स्यगंधी से कहा कि वह ऋषि को उस पार छोड़ आए। जब वह ऋषि पराशर को दूसरी ओर ले जा रही थी तो मुनि ने उसे देख कर नेत्र मूँद लिए। उन्होंने अपनी दिव्य दृष्टि के बल पर देखा कि चार हज़ार वर्ष से भी अधिक समय के बाद, ग्रहों और नक्षत्रों की ऐसी स्थिति उत्पन्न हुई थी, जो न केवल आकाशगंगा, हमारे तारामंडल बल्कि अनेक ब्रह्माण्डों के लिए अनुकूल थी। यही उचित समय था कि वे किसी कोख में अपना बीज डाल दें ताकि संसार को एक ऐसा व्यक्ति मिल सके, जो कुंडलिनी विद्या को नवजीवन दे सके।

उन्होंने हौले से नेत्र खोले और सोलह वर्ष से भी कम आयु की युवती को इच्छा पूर्ति के नेत्रों से देखा। वह अपनी छहरी देह के बल पर नाव खे रही थी। उसका साँवला वर्ण आबनूस की तरह दमक रहा था। इससे वृद्ध ऋषि को कोई अंतर नहीं पड़ता था कि उसकी देह से मछली जैसी गंध आ रही थी। वह सदा से ही ऐसी थी, उसे मत्स्यगंधी कहा जाता था। ऐसी युवती जिसकी देह से मछलियों की गंध आती हो।

पाराशर ने अपना गाँठदार हाथ उस युवती पर रख दिया। सूर्योदय और सूर्यास्त कभी नहीं मिलते परंतु किरणें तो सुनहरी होती हैं। अनजान और स्तब्ध, मत्स्यगंधी ने पहले ऋषि के हाथ और फिर उनके नेत्रों में देखा। वे पाराशर थे। उनका सम्मोहन, तो धरती के गुरुत्वाकर्षण से भी कहीं अधिक था। युवती ने वहीं समर्पण कर दिया, हालांकि वह थोड़ी सकुचाई हुई थी क्योंकि वह न केवल कुँवारी और अविवाहिता थी बल्कि उस समय दिन का प्रखर प्रकाश भी फैला हुआ था।

उसके विचारों को भांप कर पाराशर ने एक मंत्र पढ़ा व हवा में फूँक मारी। पास ही किसी द्वीप पर वृक्ष से पत्ता गिरा परंतु उसके नीचे गिरने से पहले ही, जाने कहाँ से बादल आ गए और उन्होंने सूर्य को अपनी ओट में ले लिया। चारों ओर मोटी धुँध छा गई और किनारा दिखाई देना बंद हो गया। उसी स्थान पर महान ऋषि पाराशर, महान व पारौणिक वेद व्यास जी के पिता बने।

उन्होंने मत्स्यगंधी से विदा लेते हुए कहा, “अब तुम्हारी देह से किसी मछुआरिन की नहीं, कमल पुष्पों की गंध आएगी। तुम अक्षिता योनि रहोगी और तुम्हारा पुत्र ऐसा महान कवि होगा, जैसा आज तक इस संसार में नहीं जन्मा।” नाव अभी पानी के बीच ही थी परंतु ऋषि पानी पर तैर कर, दूसरी ओर चले गए। नियति ने अपनी योजना पूरी कर दी थी और पाराशर और मत्स्यगंधी की पुनः कभी भेंट नहीं होने वाली थी।

कुछ वर्ष बाद, उन्होंने व्यास से संपर्क किया ताकि उन्हें उनके जीवन के महान लक्ष्य से परिचित करवा सकें।

## व्यास की दीक्षा

नन्हे व्यास की आयु मुश्किल से सात बरस रही होगी, जब उनके पिता ऋषि पराशर ने उन्हें दक्ष के यज्ञ, देवी के प्रकट होने, अगस्त्य के तप तथा शिव के निर्देशानुसार विद्या प्रदान करने की कथा कह सुनाई।

पाराशर ने सावधानी से चारों ओर देखा और एक गुप्त मुद्रा के साथ, चारों ओर धुंध का आवरण बना दिया, जैसा उन्होंने मत्स्यगंधी के साथ समागम के समय किया था। पक्षियों ने चहचहाना बंद कर दिया और सुदूर स्थानों पर चले गए; हिरण वहाँ से भाग खड़े हुए। झींगुरों ने झंकारना बंद कर दिया और अधिकतर छोटे जीव भी स्वयं ही अलोप हो गए क्योंकि मुनि ने अपने प्रभाव से तापमान को कई डिग्री तक घटा दिया था।

पाराशर बोले, "यह विद्या किसी दूसरे के कान में नहीं पड़नी चाहिए।" और उन्होंने नन्हे व विवेक-बुद्धि संपन्न व्यास को संपूर्ण विद्या का ज्ञान सौंपा, जिसमें देवी का कुंडलिनी पक्ष भी शामिल था।

उन्होंने कहा, "तुम्हें देवी की साधना पूरी करनी होगी, उनकी कृपा से तुम, इस गुप्त विद्या को, मानवजाति के कल्याण के लिए लिपिबद्ध कर सकोगे। वे वाणी की शक्ति, वाग्वादिनी कहलाती हैं। वे तुम्हारे माध्यम से बोलेंगी। तुम्हें चौथे वेद की रचना करते हुए, उसमें उनके पूजन को शामिल करना चाहिए। पूरी एकाग्रता, निष्ठा, भक्ति-भाव, अनुशासन, धैर्य तथा श्रद्धा के साथ उनका आवाह्न करो और सब कुछ संभव हो जाएगा।"

व्यास ने अपने पिता को दंडवतप्रणाम किया और देवी साधना को पूर्ण करने का संकल्प लिया।

उन्होंने कहा, "पिता श्री! आपके वचन का पालन करना ही मेरे जीवन का एकमात्र लक्ष्य होगा।"

पाराशर ने गर्व से घोषणा की, "मेरे पुत्र! यह संसार सदैव तुम्हारी कीर्ति का गुणगान करेगा और तुम वेद व्यास के नाम से जाने जाओगे।"

व्यास ने आनंद के अतिरेक में जयघोष किया, "मेरे पिता की जय हो! देवी की जय हो!"

पाराशर पुत्र के मस्तक को छू कर बोले, "तुम इस धरती पर सर्वप्रथम हो, जिसे देवी की कुंडलिनी साधना की दीक्षा प्रदान की गई है।"

वेद व्यास ने बारह वर्ष तक जगन्माता के साकार रूप पर ध्यान किया और फिर अगले बारह वर्ष में उन्हें कुंडलिनी के रूप में, अपने भीतर छिपी सुप्त शक्ति के रूप में जाग्रत करने का आमंत्रण दिया।

जब वे ग्रंथियों को खोलते हुए, चक्रों का भेदन करते हुए, उनके भीतर उठीं, तो व्यास ज्ञान व प्रकाश से संपन्न हो उठे। अपने भीतर असीम शक्ति, अबाधित ऊर्जा व दिव्यता सहित उन्होंने मानवजाति के लिए महाकाव्यों की रचना की। उन्होंने एक चौथे वेद, अथर्व वेद की रचना करते हुए तंत्र पर प्रकाश डाला, जिसमें गुप्त श्लोकों में देवी की महिमा व पूजन भी वर्णित है।

विवेक तथा ऊर्जा से संपूर्ण व्यास ने ब्रह्मनंद पुराण की रचना की जिसमें ललिता सहस्रनाम का पहला लिखित प्रमाण मिलता है। देवी अब भी उनके भीतर काम कर रही थीं और ऐसा कुछ नहीं था जो पौराणिक व्यास को कुछ करने से रोक पाता। एक के बाद एक, उन्होंने साधारण से ले कर विशेष विषयों को समाहित करते हुए, ज्ञान के सभी पक्षों को ले कर अठारह पुराणों की रचना की। इनमें ज्योतिष से ले कर गौ पालन तक सब कुछ शामिल था। पर देवी यहीं नहीं थमीं।

अंततः, उन्होंने अपने समय के सबसे महानतम ग्रंथ — महाकाव्य महाभारत के लिए अपना

योगदान दिया। उनकी परमविद्या का काव्यात्मक स्तोत्र इतने वेग से फूट रहा था कि यहाँ तक कि व्यास स्वयं उसकी गति की बराबरी नहीं कर पा रहे थे। जो भी उनके शब्दों को लिखने की चेष्टा करता, शीघ्र ही थक जाता। उन्होंने शिव के पुत्र गणेश से आग्रह किया कि वे उनके लिए महाभारत का लेखन करें।

जिस प्रकार वर्षा के दिनों में, हिमालय से हज़ारों झरने पूरे वेग से नीचे की ओर आने लगते हैं, उसी प्रकार सृजनशीलता के असंख्य विचार व्यास की चेतना में उत्पन्न हो रहे थे। हालांकि इसमें कोई आश्चर्य नहीं था, क्योंकि देवी अपने साधक के लिए बुद्धि तथा अनुकंपा के रूप में ही प्रवाहित होती हैं। अथक/भविष्य की ओर अग्रसर वेद व्यास ने भागवद् पुराण लिखा, यह वही अमर कथा थी, जो एक बार भगवान शिव ने पार्वती को सुनाई थी।

देवी ने व्यास के सम्मुख आ कर कहा, "मेरे पुत्र! तुम्हारा कार्य पूर्ण हुआ। केवल तुम ही इन पुराणों का लेखन कर सकते थे। जाओ, अब मेरे धाम में शाश्वत काल तक वास करो।" इस प्रकार महा देवी व्यास जी में समाहित हो गईं और व्यास पुनः कभी नहीं दिखे।

कुंडलिनी साधना में, व्यास धरती पर सच्चे पहले साधक थे, और यह हमारा महान सौभाग्य है कि हमारे पास ललिता सहस्रनाम है, जहाँ चक्रों की संपूर्ण साधना, देवी के कंठ में सुशोभित मणियों की माला की तरह है।

†

कहीं न कहीं, मैं आशा करता हूँ कि देवी को आमंत्रित करते हुए, मौलिक नियम को जाग्रत करते हुए, आप भी व्यास की प्रतिभा का कुछ अंश पा सकते हैं, आप भी उनकी तरह रचना के सागर बन सकते हैं और कहीं न कहीं आप भी व्यास जैसा ही पद पा सकते हैं। याद रखें, कभी इन ऋषियों का ऐसा ही अस्तित्व था, जैसा की आपका और मेरा है।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने बहुत सुंदर शब्दों में रामचरितमानस में कहा है :

"जनि् आचरजु करु मन माहि, सुत तप त्ए दुरलभ कछु नाहि.
तपबल त्ए जग रुजयि बिधाता, तपबल बिष्णु भय्ए परित्राता.
तपबल सम्भु करहि सन्हारा, तप त्ए अगम
नहि कछु सन्सारा."

(रामचरितमानस, 1, 162.1–3 )

प्रिय! मन में आश्चर्य मत करो। तप के साथ कुछ भी असंभव नहीं है। तप के बल पर ही ब्रह्मा रचते हैं। विष्णु पालन करते हैं और शिव संहार करते हैं। तीनों लोकों में ऐसा कुछ भी नहीं, जिसे तप के बल पर प्राप्त नहीं किया जा सकता।

यह भले ही आपको कठिन लगे, परंतु कुंडलिनी जागरण के बाद, जब आपको यह अनुभव होता है कि आप वास्तव में क्या हैं, तो आपको यह एहसास होगा कि आप सबसे बड़े है और छोटा या बड़ा कुछ नहीं होता। अगर आप इस पथ पर चलने को राजी हैं, तो आपको बाधाओं

को उसी तरह काटना होगा, जिस तरह जल पाषाण को काट देता है। आपकी बाधाएँ उसी तरह गायब हो जाएँगी जैसे सूर्य उदय होते ही ओस की बूँदें अलोप हो जाती हैं।

यही देवी के अस्तित्व की पहचान है।

# जागरण

महाराज केसरी और पूर्व जन्म की अप्सरा देवी अंजना ने संतान प्राप्ति के लिए घोर तप आरंभ किया। सूर्य की धूप से उनके शरीर जर्जर और मलिन हो गए, हिम ने उन्हें जमा दिया, तेज़ हवाओं ने उन्हें डिगाना चाहा, वन्य जीव-जंतुओं ने भी बहुत सताया परंतु अनेक वर्षों तक वे अपनी तपस्या से पीछे नहीं हटे और शिव के तेजस्वी रूप पर ध्यान लगाए बैठे रहे।

उनकी भक्ति और तपस्या से प्रसन्न हो कर, शिव सामने प्रकट हुए और वरदान माँगने को कहा।

शिव ने आशीर्वाद देते हुए कहा, "तुम्हारे यहाँ एक महान पुत्र उत्पन्न होगा। वह बृहस्पति से भी बुद्धिमान वायु से भी बलशाली व सूर्य से भी अधिक तेजस्वी होगा। उसे न तो जल डुबो सकेगा और न ही आग जला सकेगी, उसे इस लोक या परलोक का कोई भी शस्त्र मार नहीं सकेगा। आठों सिद्धियाँ उसकी दासी होंगी।"

केसरी और उनकी पत्नी मंत्रमुग्ध भाव से खड़े रह गए। उनके लिए तो इस प्रकार का वरदान पाना किसी स्वप्न से कम नहीं था — अपनी पूरी आभा के साथ प्रस्तुत शिव उन्हें एक दुर्लभ वरदान दे रहे थे।

शिव बोले, "हे भद्र राजन! सबसे बड़ी बात यह होगी कि तुम्हारी संतान अमर होगी।"

पति-पत्नी आनंद से जयघोष करने लगे, "नमो पार्वती पत्येः, हर-हर महादेव।"

वे उनके चरणों में गिर पड़े। शिव ने आशीर्वाद देते हुए हाथ उठाया और अलोप हो गए।

तब अद्‌भुत आंजनेय का जन्म हुआ। असीम शक्ति और बल के स्वामी, अपनी आयु के बालकों से कहीं अधिक बुद्धिमान थे। वे एक से दूसरे वृक्ष पर छलांग भरते हुए, एक-एक छलांग में कई मील लांघ लेते। दूसरे बच्चों से खेलते समय, अक्सर वे पर्वत की तरह विशाल रूप धारण कर, साथियों को भयभीत करते और फिर चींटी से भी छोटे आकार में आ कर छिप जाते। एक बार, वे सूर्य के गोले को संतरा समझ कर निगल गए थे; तब देवों को हस्तक्षेप कर सूर्य के प्राणों की रक्षा करनी पड़ी।

कोई भी उनकी असीम ऊर्जा के आगे टिक नहीं सकता था। वे विशालकाय वृक्षों को जड़ों से उखाड़ कर, इस तरह उछाल देते मानो वे कुशा के तिनके हों। शीघ्र ही यह एक समस्या बन गई, वे अपनी बालसुलभ चंचलता के साथ महान ऋषियों के आश्रमों और उनके यज्ञों में बाधा देने लगे। जब हनुमान को रोकना कठिन हो गया तो उन्होंने उन्हें शाप दिया कि वे अपनी सारी शक्तियों को भुला देंगे। वे उन्हें तभी पुनः पा सकेंगे, जब कोई उन्हें उनकी सिद्धियों का स्मरण करवाएगा।

धीरे-धीरे, हनुमान एक सामान्य वानर की तरह जीने लगे — चतुर, बुद्धिमान और साहसी किंतु एक सामान्य वानर। सबने चैन की साँस ली। अनेक वर्ष बीत गए। राम का जन्म हुआ, उनका विवाह सीता से हुआ, उन्हें वनवास भेजा गया, सीता का रावण ने हरण किया और हनुमान की राम व लक्ष्मण से भेंट हुई। राम की एक झलक पाते ही हनुमान सदा के लिए उनके भक्त हो गए। धरती के समान प्राचीन, वृद्ध रीछ जाम्बवंत ने अपनी दूरदृष्टि से देखा कि सीता, एक द्वीप पर अशोक वाटिका में दुखी मन से बैठी हैं और वह वाटिका, रावण के भव्य महल के सुंदर उद्यान में स्थित है। द्वीप तक जाने के लिए सागर को लांघना आवश्यक था। कोई भी नाव

वहाँ तक नहीं जा सकती थी। वे सभी स्तब्ध थे और हनुमान को यह काज सौंपा गया कि वे राम की मुद्रिका सीता तक ले कर जाएँगे और उन्हें संदेश देंगे कि सभी पुरुषों में श्रेष्ठ, पुराषोत्तम राम आ कर उन्हें मुक्त करेंगे।

हनुमान ने जाम्बवंत तथा राम की सेना के अन्य वानरों से कहा, "मैं तो एक साधारण वानर हूँ। मैं उस द्वीप तक कैसे जा सकता हूँ? मैं तो अच्छी तरह से तैरना भी नहीं जानता।"

सभी उस अथाह सागर को देख रहे थे और हनुमान की दयनीय दशा का अनुमान लगा सकते थे।

"पर तुम छलांग भर सकते हो।" जाम्बवंत धीमे से बोले।

"छलांग!" हनुमान ने आश्चर्य से कहा, "भला सागर को छलांग में कौन लांघ सकता है? जाम्बवंत यह कोई नाला नहीं, विशाल सागर है।"

जाम्बवंत दृढ़ता के साथ बोले, "केवल तुम ही ऐसा कर सकते हो। हनुमान, क्या तुम भूल गए कि तुम कौन हो?"

हनुमान ने भ्रमित हो कर जाम्बवंत को देखा। उनकी आँखों के आगे बचपन की कुछ भूली-बिसरी यादें नाच उठीं। हालांकि अभी उन बातों का कोई सार समझ नहीं आ रहा था।

जाम्बवंत ने सबके बीच ऐलान करते हुए कहा, "हनुमान! तुम्हारा जन्म शिव के वरदान से हुआ था,।"

हनुमान को उनकी शक्तियों का स्मरण करवा कर, जाम्बवंत ने उन्हें ऋषि के शाप से मुक्त करते हुए कहा, "तुम कोई साधारण वानर नहीं हो। जल तुम्हें डुबो नहीं सकता, अग्नि तुम्हें जला नहीं सकती, आंजनेय! हे हनुमान, अपनी उन शक्तियों को स्मरण करो, जो तुम्हें जन्म के साथ ही दी गई थीं। तुम हिमालय की तरह विशालकाय और किसी राई के दाने जैसा छोटा आकार धारण कर सकते हो। तुम इस धरती से भी भारी और पंख से भी हल्के हो सकते हो। तुम वायु से भी अधिक तेज़ी से उड़ सकते हो, तुम सागर को अपनी छलांग से लांघ सकते हो।"

हनुमान के भीतर एक विचित्र सी खलबली मच गई और उनके बचपन की यादें मानो और सजीव हो उठीं। उन्होंने देखा कि वे किस तरह आसानी से उड़ते हुए सूर्य को फल समझ कर खाने के लिए आगे चल दिए थे, या वे कैसे पुराने से पुराने वृक्षों को जड़ से उखाड़ दिया करते थे। उन्हें याद आया कि किस तरह वे एक ही छलांग में मीलों की दूरी तय कर लेते थे।

हनुमान ने जयघोष किया, "जय श्रीराम!" इतना कहते ही पेड़ गिरने लगे और भूकंप सा आ गया। उनका शरीर विशाल रूप धारण कर रहा था।

दूसरे वानर अचानक उनकी कमर तक आ गए और फिर घुटनों तक आते हुए, अंततः उनके पैर के अंगूठे जितने छोटे दिखाई देने लगे। हनुमान वहीं नहीं रुके, वे अपना आकार बढ़ाते गए, और बढ़ाते चले गए। जल्दी ही उन्होंने नीचे देखा तो उन्हें वानरों की वह विशाल सेना रेत के कणों जैसी दिखने लगी, उनमें जाम्बवंत, किसी छोटे काले तिल या बिंदु जैसे दिख रहे थे।

सभी ने पूरे बल के साथ जयघोष किया, "जय बजरंग बली, जय बजरंग बली!"

"जय श्री राम!" हनुमान की गर्जना ऐसी थी मानो ग्रह आपस में टकरा गए हों और वे एक ही बड़ी छलांग से सारा सागर लांघ गए।

हम सभी हनुमान हैं — असीम शक्ति व संभावनाओं से भरपूर। यह केवल एक कहावत नहीं है। हमारी वैज्ञानिक प्रगति से इसका प्रमाण मिलता है। हनुमान की तरह, हमारी प्रतिभा भी हमारे भीतर सुप्त अवस्था में पड़ी है; हमारी संभावना साकार होने की प्रतीक्षा में है। हम एक वरदान के साथ जन्मे हैं और उसके विषय में भूल गए हैं, परिणामस्वरूप, हमने जीवन के साधारण रूप को ही अपनी नियति मान लिया है। जब हम अपनी वास्तविकता, अपनी सच्ची प्रकृति के संपर्क में आते हैं, जब कोई जाम्बवंत हमें हमारे सच्चे स्वरूप का स्मरण करवाता है, तो हम अपनी बुद्धि विवेक और पूर्ण विश्वास के साथ विकसित होने लगते हैं। तब हम चंद्रमा पर जा उतरते हैं और पाते हैं कि हम असीम और अनंत हैं।

यही कुंडलिनी का संक्षिप्त रूप है। यह आपकी आदि ऊर्जा है, वह रचनात्मक बल, जो आपको आपके उच्चतम स्तर तक ले जाने का काम करती है, जिस प्रकार सागर के तल में मोती रहते हैं, उसी तरह यह भी आपके मेरूदंड में कुंडली मारे पड़ी है।

कुंडलिनी आपके भीतर आपका ध्रुव है।

जब यह जाग्रत होती है, तो आपको एहसास होता है कि आप पहले से ही कितने असीम बलशाली हैं। आपको अनुभव होता है किस तरह सारा ब्रह्माण्ड आपके भीतर है। यदि आप एक पुरुष हैं तो यह आपकी स्त्रैण ऊर्जा है और अगर आप एक स्त्री हैं तो यह आपकी पुरुषोचित ऊर्जा है। यही आपका मार्ग है, आपके भीतर शाश्वत संपूर्णता तक जाने का मार्ग!

## हमारे भीतर की उस सर्वश्रेष्ठ ऊर्जा की पहचान

कुंडलिनी हमारे भीतर सुप्तावस्था में है क्योंकि हमें जन्म से ही, हमारी कमियों व अधूरेपन का एहसास दिलाया जाने लगता है। सदा हमारी तुलना दूसरों से की जाती है और हमें दूसरों की तरह बनने का उदाहरण दिया जाता है। कोई हमें नहीं कहता कि हम अपने-आप में बहुत अच्छे हैं; वे सदा हमारे भीतर कोई खूबी या कोई गुण विकसित करना चाहते हैं। यही बंधन हमारे भीतर सदा के लिए एक अधूरेपन के भाव को जन्म देता है। इससे उबरने के लिए, हम बाहरी तौर पर अपनी खोज आरंभ कर देते हैं। हम उन दूसरे लोगों की तलाश करने लगते हैं, जो हमें अपनी मंजूरी दे सकें, जो हमें सराह सकें, हमारी पीठ थपथपा सकें। ऐसा करने में, हम लगातार अपनी ही शक्तियों से दूर होते चले जाते हैं, जिनके साथ हमें धरती पर भेजा गया था।

ऐसा क्यों है, पुरुष व स्त्री प्रायः संभोग के बाद स्वयं को पूर्ण क्यों अनुभव करते हैं, भले ही ऐसा थोडी देर के लिए हो, परंतु उनके मन में यह भाव क्यों आता है? उन क्षणों में अपने-आप ही सुरक्षा, प्रेम व सहजता का एक भाव उदित होता है। हम जो भी करते हैं, हर काम को निष्ठुर ढंग से, यहाँ तक कि अवचेतन रूप से भी, स्वयं को पूरा अनुभव करने की दिशा में जुटे रहते हैं। हम प्यास लगने पर पानी पीते हैं; भूख लगने पर भोजन करते हैं। हम अपने भीतर जिस अभाव को अनुभव करते हैं, प्रकृति हमें ऐसा करने काम करने को विवश करती है ताकि उस अभाव को पूरा किया जा सके।

हममें से कुछ उस पूरेपन के भाव को महसूस करने के लिए पद, सत्ता, नाम, यश व धन आदि के पीछे भागते हैं। लोग अक्सर टूटे संबंधों की भरपाई के लिए एक के बाद एक संबंध

बनाते चले जाते हैं। ऐसा क्यों है? क्योंकि हमें इसी तरह बनाया गया है — हमें लगता है कि हमारे पास कोई या कुछ ऐसा होना चाहिए जो हमें पूरेपन का एहसास दे सके। हमारी सच्ची प्रकृति अपने-आप में संपूर्ण व विशुद्ध है; यही परमानंद है। हालांकि, हमारी सोच और इस संसार की माँगें हमें लगातार हमारे अधूरेपन का एहसास दिलाती रहती हैं, मानो हमें अपने जीवन में प्रसन्नता पाने के लिए कोई वस्तु या व्यक्ति का साथ निश्चित रूप से चाहिए।

एक जैसी वस्तुएँ एक दूसरे की ओर आकर्षित करती हैं, वे एक-दूसरे की पूरक नहीं होतीं, केवल विपरीत ही परस्पर पूरक हो सकते हैं। उत्तर, उत्तर को नहीं, दक्षिण को अपनी ओर खींचता है। इस दौड़ तथा पूरा महसूस करने के संघर्ष में, हम अपनी ज़रूरत के अनुसार विपरीत को आकर्षित करते रहते हैं, जो सही मायनों में हमें भरपूर करेगा। ऐसा करने में, हम गलत साथियों, गलत नौकरियों, गलत बॉस आदि को अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं।

कुंडलिनी जागरण के साथ ही हमारे जीवन में, विपरीत को अपनी ओर आकर्षित करने की प्रक्रिया पर रोक लग जाती है। यह हमारे भीतर संपूर्णता और पूरेपन की भावना के साथ आरंभ होता है। 'मैं अपने-आप में संपूर्ण हूँ' तथा 'मेरे पास अपने भीतर से भरा-पूरा होने तथा प्रसन्न बने रहने के लिए सब कुछ है।' यह सब सही मायनों में कुंडलिनी की समझ के साथ ही आरंभ होता है।

'प्रतिभा' को हम 'सुप्त' का ही दूसरा शब्द मान सकते हैं। हमारी प्रतिभा हमारे भीतर सुप्त अवस्था में है, उन्हें साकार करने के लिए हमें उन्हें आगे लाना होगा। ठीक इसी तरह, हम सबके भीतर, कुंडलिनी की मौलिक ऊर्जा सुप्त अवस्था में है। कुंडलिनी जागरण का पथ हमें भीतर की ओर ले जाता है और हम अपने भावों, विचारों तथा भीतर छिपी प्रतिभा के संसार पर ध्यान दे पाते हैं। यह अपने ही अस्तित्व रूपी सागर में गहरी छलांग भरने जैसा है ताकि चरित्र व विद्वता रूपी मोतियों को सतह पर लाया जा सके।

कुल मिला कर यही कह सकते हैं कि कुंडलिनी कोई भौतिक वास्तविकता नहीं है। भौतिक शरीर के साथ कुंडलिनी का कोई भी संबंध, सबसे बेहतर रूप से अज्ञानी तथा बदतर रूप में विचित्र है। कुंडलिनी जागरण के समय, आपके मेरूदंड में कोई सर्प कुंडली नहीं खोलता। ये चक्र आपके शरीर में भौतिक रूप से उपस्थित नहीं हैं। ये ज़्यादा से ज़्यादा साइकोन्यूरॉटिक स्नायुजाल हैं। इन्हें पूरी योजना के साथ उन स्थानों पर रखा गया है, जहाँ स्नायुओं का जाल है। इसकी वजह से कुंडलिनी को कोई मिथकीय अवधारणा नहीं माना जा सकता। यह आपका यथार्थ है, भले ही यह भौतिक न हो परंतु यह प्रत्यक्ष है। आत्मा को प्रमाणित नहीं किया जा सकता, यहाँ तक कि चेतना का भी कोई भौतिक अस्तित्व नहीं, पर फिर भी इसके अभाव में, हम कितने ही बुनियादी कार्य तक नहीं कर सकते। ठीक इसी प्रकार, कुंडलिनी जागरण या चक्रों का भेदन भी सूर्य, चंद्र व तारों जितना ही सत्य व यथार्थ है।

कुंडलिनी जागरण के दौरान होने वाली संवेदना या चक्र साधना के दौरान होने वाले अनुभव मिथ्या या अवास्तविक नहीं हैं। वे वास्तविक हैं, परंतु वे चेतना से जुड़े हैं। वे किसी और के लिए नहीं केवल आपके लिए अर्थ रखते हैं। यही वजह है कि कुंडलिनी जागरण में दूसरे के अनुभवों को अपने पर लेने की भूल नहीं करनी चाहिए। तब आपके मन में उस अनुभव को पाने का लक्ष्य आ जाता है, आप सोचने लगते हैं, "ओह, मुझे भी अपनी रीढ़ की हड्डी में वैसी ही सनसनाहट

महसूस होनी चाहिए ताकि मुझे पता लग सके कि मैं सही तरह से ध्यान कर रहा हूँ या नहीं।" इससे आपका ध्यान भंग होगा और आप चक्रों पर ध्यान लगाने के पथ से भटक जाएँगे।

जब आप एक गर्म कमरे में होते हैं तो आपको गर्मी दिखाई नहीं देती, आप उसे महसूस करते हैं। ठीक इसी तरह, जब आप चक्रों पर ध्यान लगाना आरंभ करते हैं, तो आप अपने अनुभवों तथा नई प्राप्त योग्यताओं के बल पर ही जान पाते हैं कि आपके भीतर रूपांतरण हो रहा है। कुंडलिनी जागरण का सबसे बड़ा रूपांतरण यह नहीं है कि आपको चकाचौंध करने वाला प्रकाश अवश्य दिखेगा (हालांकि ऐसा हो सकता है और मेरे साथ असंख्य अवसरों पर हो चुका है।) या आप पंख के समान हल्के या बहुत ही ऊर्जान्वित महसूस नहीं करेंगे। ये सब उपोत्पाद हैं। यह असली उत्पाद नहीं, यह असली मक्खन की बजाए, उससे बनी छाछ है।

कुंडलिनी जागरण पर वास्तविक रूपांतरण वह होगा, जब आप अपनी पुरानी प्रवृत्तियों और नकारात्मकता को उसी तरह त्याग देंगे जैसे कोई सर्प अपनी केंचुली छोड़ देता है। अब आप पहले की तरह गुस्सा नहीं होते और छोटी-छोटी बातों पर अपनी खीझ नहीं उतारते। अब आपके भाव और सोच, आपको अपने बस में ले कर कुचल नहीं सकते। आप अपने को काबू में रखना सीख लेते हैं। जागरण के साथ ही आपके भीतर रचनाशीलता का असाधारण ज्वार उमड़ पड़ता है और आप अपने भीतर छिपी प्रतिभाओं को देख, आश्चर्यचकित हो जाते हैं, जिनके बारे में आपने कभी सोचा तक नहीं था।

इस शब्द की दो और व्याख्याएँ हो सकती हैं :

# 1. कुंड + लीन + ई

'कुंड' का अर्थ है, छेद, धरती में एक गोल छिद्र जो कि अग्नि या जल के सरंक्षण के लिए किया जाता है। यज्ञ करने वाले यज्ञकुंड भी 'कुंड' कहलाते हैं। 'लीन' का अर्थ है, समाहित हो जाना या जुड़ना और 'ई' का अर्थ है, ऊर्जा

सभी मनुष्यों के भीतर एक प्रकार की ऊर्जा सुप्त अवस्था में, एक प्रकार के स्नायु जाल में अपने-आप में समाहित पड़ी है। कहते हैं कि ई के अभाव में शिव भी शव हैं। ई ऊर्जा का प्रतिनिधित्व करती है। ऊर्जा के अभाव में न तो किसी चीज का अस्तित्व हो सकता है और न ही कोई चीज काम कर सकती है।

आपकी रचनात्मक ऊर्जा सतह में पड़ी है क्योंकि आप अपनी सच्ची प्रकृति से दूर हो गए हैं। जब आप भीतर की ओर मुड़ते हुए, अपनी ही सच्ची प्रकृति पर ध्यान देने लगते हैं, तो यह आत्म-अवशोषित, सुप्त ऊर्जा उदित होने लगती है और हर बाधा को पार करते हुए, आप स्वयं को पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली अनुभव करने लगते हैं।

# 2. कुंडल का स्त्रीलिंग

कुंडल का अर्थ है, अंगूठी या रस्सी की कुंडली। कुंडलिनी, आपकी सुप्त अवस्था का स्त्रैण पक्ष है, जो कुंडली मारे पड़ा है। आप कल्पना कर सकते हैं कि पानी सीधे पाइप से जाने की बजाए गोलाकार मुड़े हुए पाइप से जा रहा है।

हमारे अपने बारे में, हमारी नकारात्मक सोच, हमारे भाव और मोह, कुंडलिनी के पथ को मोड़ देते हैं। इसमें ऐंठन आ जाती है। जिस तरह जब आप बच्चे को फटकारते हैं तो वह अपने बिस्तर पर सिकुड़ कर लेट जाता है, कुंडलिनी भी इसी तरह आपके मूलाधार चक्र में सिमटी है। ऐसा इसलिए भी है क्योंकि हमें अक्सर अपने-आप से ही भयभीत होने का संस्कार दिया जाता है। हम भूल करने और निर्णय लेने से डरते हैं। हम उचित कार्य करने से डरते हैं और चाहते हैं कि जब हम कुछ करें तो दूसरा हमारे कार्य की पुष्टि करे। भय के मारे, आप अपनी टाँगें पसार कर नहीं सोते, आप हमेशा थोड़े सिकुड़े रहते हैं।

कुंडलिनी का स्वाभाविक धाम तो स्वाधिष्ठान चक्र में है पर ये नीचे उतर कर मूलाधार चक्र में पड़ी है। ये दो चक्र काम के केंद्र हैं और लोगों के जीवन में सबसे बड़ा अपराधबोध, उनके यौन संबंधी विचारों और कामों से ही जुड़ा होता है। जब आप अपने-आप को पूरी तरह से स्वीकार लेते हैं और अपने साथ सहज होने लगते हैं तो वहीं से कुंडलिनी का जागरण आरंभ होता है। तब आप उसे ध्यान और मनन के साथ आगे ले जाते हैं। आप इसे इसकी सिकुड़ी और मुड़ी हुई अवस्था से बाहर निकालते हैं और यह पूरी तरह से निर्भीक और स्वीकार्य भाव में आ जाती है। यह सुप्त नहीं रहती। यह जाग्रत और सार्थक हो उठती, यह न केवल आपके सपनों को साकार करने का माध्यम बनती है। बल्कि आपको संपूर्णता का एहसास भी दिलाती है। यही कारण है कि इसे देवी का निराकार रूप कहा जाता है जो स्वयं दैवीय माता से कम दैवीय, कम शक्तिशाली और कम संपूर्ण नहीं है।

# तीन ग्रंथियाँ

बुद्ध के प्रधान शिष्यों में से एक, आनंद दशकों से उनकी सेवा करते आ रहे थे। वे उनका बहुत आदर करते थे, उनकी हर आज्ञा का पालन करते, उनसे प्रेम करते और उन्होंने, सबसे परे जाते हुए, अपना पूरा जीवन ही तथागत को समर्पित कर दिया था।

एक दिन उन्होंने बुद्ध से कहा, "हे भद्रे! आपने बहुत से लोगों को प्रबुद्ध होने में सहायता की है। ऐसा क्यों है कि मैं ही अब तक उस गहन समाधि का अनुभव नहीं पा सका, जिसके बारे में आप बात करते हैं?"

बुद्ध मुस्कुरा कर बोले, "आनंद, ऐसा इसलिए है क्योंकि तुम अब तक मुझसे ही बंधे हुए हो। अगर तुम सच्चे जागरण का अनुभव पाना चाहते हो, तो सारे बंधन, सारी ग्रंथियों से मुक्त हो जाओ।"

आनंद बुद्ध की प्रतिक्रिया से भ्रमित हो उठे।

वे बोले, "तथागत! आप क्या कह रहे हैं, यदि मैं आपके पीछे चलते हुए दूसरे किनारे तक नहीं जा सका तो स्वयं कैसे जा सकूँगा? एक बछड़ा अपनी माँ के पीछे चल कर ही तो सही-सलामत अपने घर पहुँचता है।"

"आनंद, तुम तो पहले से ही अपने घर में हो। केवल तुम्हें इसका अनुभव नहीं हे। अपने सारे बंधन खोलो और अपने मन के उन अज्ञात कोनों में झाँक कर देखो कि वहाँ क्या रखा है।"

आनंद बुद्ध की प्रतिक्रिया सुन कर निराश हो गए। उन्हें लगा कि उन्होंने आजीवन इसी सोच के साथ समय नष्ट किया कि बुद्ध का पालन करने का अर्थ होगा, जागरण, पर तथागत तो इससे विपरीत ही कह रहे थे। तीन माह पश्चात्, बयासी वर्ष की आयु में बुद्ध ने महासमाधि ग्रहण की और आनंद के शोक की सीमा न रही। उसी वियोग और गहन शोक की अवस्था में, वे ध्यान करने बैठे। कुछ ही क्षणों में, वे गहरी भावदशा में चले गए। उसी जागरण की अवस्था में, उन्हें गहन आत्मबोध प्राप्त हुआ : शृंखला चाहे सुवर्ण की हो अथवा लौह की, वह शृंखला ही कहलाती है। जब तक आप किसी भी चीज़ से बंधे रहेंगे, तब तक आप सच्ची स्वतंत्रता का आनंद नहीं उठा सकते।

जागरण के पथ पर, सभी बंधनों को खोल देना चाहिए। यदि आप अपनी पहचान पाना चाहते हों तो गर्भ नाल को काटना ही होगा। जब तक हम किसी चीज़ से स्वयं को दूर नहीं करते, तब तक हमें अनुमान नहीं होगा कि हम उससे कितना गहरा मोह रखते हैं। जब तक हम, हमें बांधने वाली तीन ग्रंथियों की गहन जानकारी नहीं पा लेते, तब तक कुंडलिनी जागरण व इसकी समझ हमारे लिए अधूरी ही रहेगी। हर गाँठ या ग्रंथि के साथ रस्सी की कोमलता जाती रहती है। हमारी गाँठें भी हमसे हमारी कोमलता छीन कर, असमतल बना देती हैं। जिस प्रकार हर गाँठ रस्सी को छोटा करती है, हमारी गाँठें हमारे चरित्र और बल को क्षीण करती हैं।

यह मात्र संयोग नहीं, ललिता सहस्रनाम में, कुंडलिनी की व्याख्या चक्रों से नहीं, बल्कि तीन ग्रंथियों से होती है। स्तोत्र में 182 श्लोक हैं, जिनमें से 15 चक्रों से संबंध रखते हैं। इनमें साधना, गुप्त पक्ष, चक्रों की प्रकृति, उनके रूप, रंग तथा वर्णों के बारे में बताया गया है। परंतु, पहले तीन

श्लोक अपने-आप में पूर्ण हैं। उनमें केवल यही बताया गया है कि तीन ग्रंथियों को भेदने के बाद, कुंडलिनी कैसे जाग्रत होती है। इसके बाद जा कर ही चक्रों का विवरण आता है।

इन ग्रंथियों को अपने-आप में खोलना ही, एक प्रकार की साधना है, और किसी भी अन्य साधना की तरह, इसके साथ भी बाहरी और आंतरिक, दोनों प्रकार की बाधाएँ शामिल हैं।

## बाधाओं से मुक्ति पाना

किसी भी प्रकार की साधना में दो प्रकार की बाधाएँ पाई जाती हैं : बाहरी व आंतरिक। बाहरी बाधाओं का संबंध अनुकूल परिवेश से है जिसमें प्राकृतिक आपदा, असुरक्षित स्थान, सामाजिक सहयोग का अभाव, उचित भोजन व साधनों का न मिलना आदि आता है। बाहरी चुनौतियाँ दो प्रकार की होती हैं : आदि-भौतिक, ये बाधाएँ साधनों के अभाव में आपकी प्रगति में बाधा बनती हैं, और आदि-दैविक, प्रकृति की ओर से उत्पन्न होने वाली बाधाएँ जैसे तूफान, वन्य पशु आदि। बाहरी बाधाओं से पार पाना कठिन नहीं होता, आप अपनी ज़रूरत के अनुसार जगह बदल सकते हैं और ये चुनौतियाँ दूर हो जाएँगी।

बाहरी चुनौतियों के बारे में यह भी कह सकते हैं : आप जितना भीतर की ओर केंद्रित होंगे, इनकी अहमियत घटती जाएगी। वनों में मेरी अपनी साधना के दौरान, मैं अपने अभ्यास को जितना गहन करता गया, बाहरी कारक उतने ही महत्वहीन होते चले गए। कुछ समय बाद, चूहों से ले कर लंगूरों तक, कोई भी मुझे परेशान नहीं कर सकता था। वे वहीं थे, पर मानो मेरे लिए वे अस्तित्वहीन हो गए थे। जब भीतरी तूफान, लंगूर और चूहे शांत हो जाते हैं, तो बाहरी कारक भी अपना बल खो देते हैं। भले ही आप वन में हों या फिर वातानुकूलित घर में, आपके लिए बाहरी बाधाओं की कमी नहीं होगी। हम उन्हें रोक भी नहीं सकते। इसके अलावा, यदि इनकी तुलना अपने भीतर की भयावह चुनौतियों से की जाए तो ये बयार का एक झोंका या केक के एक टुकड़े के समान लगती हैं।

आंतरिक बाधाएँ भी दो प्रकार की हो सकती हैं : आदि-दैहिक, ऐसी बाधाएँ जो शरीर के भौतिक रोगों से उपजती हैं, तथा आध्यात्मिक, ये चुनौतियाँ भावों, विचारों व इच्छाओं के कारण आपकी प्रगति में रोड़ा अटकाती हैं। आदि-दैहिक में दमा, गठिया, जुकाम या फिर किसी अन्य रोग को शामिल कर सकते हैं। ऐसा कुछ भी जो आपके शरीर के भीतर से उठता है और आपके ध्यान और केंद्र में विघ्न देता है, वही आंतरिक बाधा है।

हालांकि एक साधक के लिए दूसरी प्रकार की बाधा यानी आध्यात्मिक बाधा ही सबसे बड़ी चुनौती होती है। यहीं तीनों ग्रंथियों की भूमिका सामने आती है। इन्हें ब्रह्म ग्रंथि, विष्णु ग्रंथि तथा रुद्र ग्रंथि कहते हैं। कुंडलिनी जागरण के पथ पर किसी साधक को जिन आंतरिक बाधाओं का सामाना करना पड़ सकता है, वे तीनों ही इन ग्रंथियों के दायरे में आ जाती हैं।

हमारा अधिकतर जीवन अपने-आप से संघर्ष करने में ही बीत जाता है। हम कुछ भावों, विचारों व इच्छाओं को अपनी ओर से रोकने का भरसक प्रयास करते हैं और कुछ वांछित भावों व विचारों को विकसित करना चाहते हैं। हम कुछ निश्चित लोगों को क्षमा करना चाहते हैं, परंतु अपराध बोध का अनुभव करते हैं क्योंकि हम उनके कारण अपने दिल पर लगी ठेस को भुला

नहीं पाते। हम प्रसन्न होना चाहते हैं, किसी के प्रति कोई वासना या घृणा नहीं रखना चाहते, परंतु फिर भी ऐसा जान पड़ता है मानो हमारे भावों तथा विचारों का अपना ही एक जीवन हो।

हम अपनी भावनाओं व सोच को बहलाने की कोशिश कर रहे हैं, हम उनके साथ मैत्रीपूर्ण व्यवहार रखना चाहते हैं परंतु वे कोई रुचि नहीं रखते। ऐसा होने पर, उन्हें समझने की बजाए, हम उनका विरोध करने लगते हैं, उनसे कतराने लगते हैं। यही विरोध हमारे भीतर गाँठों को जन्म देता है और हमारे जीवन को जटिल बना देता है। हमारी गाँठें या बंधन, वे हमें बांधते हैं, हमें उलझाते हैं और छोटा बना देते हैं।

"मूलाधारैकनिलया ब्रह्मग्रन्थिविभेदिनी,
मणिपूरान्तरुदिता विष्णुग्रन्थिविभेदिनी.
आज्ञाचक्रान्तरालस्था रुद्रग्रन्थिविभेदिनी,
सहस्राराम्बुजारूढा सुधासाराभिवर्षिणी.
तडिल्लतासमरुचिःषट्चक्रोपरिसंस्थिता,
महाशक्तिः कुण्डलिनी बिसतन्तुतनीयसी."

(ललिता सहस्रनाम, 38–40)

मूलाधार से उठते हुए, कुंडलिनी स्वाधिष्ठान चक्र में ब्रह्म ग्रंथि को भेदती है, मणिपुर चक्र से होते हुए, अनाहत चक्र में विष्णु ग्रंथि को भेदती है और कंठ व भौहों से होते हुए, यह सिर में रुद्र ग्रंथि को भेदती है। यहीं वह शतदल कमल से भेंट करते हुए, परमानंद और दिव्य मादकता का पान करती है।
कुंडलिनी की प्रकृति प्रकाश की बैटरियों के समान है, यह छह चक्रों से पार होते हुए जगमगाती है। अमृत के मद से परिपूर्ण, इसका आकार, कमल के तने से छीले गए तंतु के अरबवें हिस्से के अंश मात्र से भी गूढ़ है।

जब आप सकारात्मकता व प्रकाश से भर उठते हैं, जब आप अपने भीतर की वास्तविकता को देखने लगते हैं, तो आप स्वयं ही खिल उठते हैं, यह सब प्रयासहीन होता है। और जब आप खिल कर खुलते हैं, तो गाँठें ढीली पड़ कर, गायब हो जाती हैं। जब आप आध्यात्मिक रूप से उन्नत हो कर, पथ पर अग्रसर होते हैं, तो ये ग्रंथियाँ अपने-आप उसी प्रकार खुलने लगती हैं जिस तरह कमल के फूल की पंखुड़ियाँ सूर्य की किरणों का स्पर्श पा कर खुलने लगती हैं। कुंडलिनी जागरण की वास्तविक प्रक्रिया में, आपको ऐसी किसी ग्रंथि पर केंद्रित नहीं रहना और न ही इन्हें खोलने का मानसिक चित्रण करना है।

जब आपके शरीर में माँसपेशी की कोई गांठ बन जाती है, तो आप उसका कोई इलाज नहीं करते; उसकी हल्के हाथों से मालिश करते ही गाँठ अपने-आप ठीक हो जाती है। ठीक इसी तरह, जब आप हौले से अपनी आत्मा को सहलाते हैं, तो यह सहज व विश्रांत होने लगती है, आप अपने साथ बहुत आरामदेह महसूस करते हैं, आपके लिए यह जानना सरल होने लगता है कि आप जीवन की इस यात्रा में कौन, कहाँ, कैसे, कब व क्यों हैं — यही कुंडलिनी जागरण के

आरंभ की प्रक्रिया है।

हिंदू परंपरा में, ब्रह्मा सृष्टि करते हैं, विष्णु सबका पालन करते हैं और शिव संहार का कार्य करते हैं। यही तीनों नियम हमें भी बांधते हैं। सृजन करने की इच्छा ही ब्रह्म ग्रंथि है, पालन करने की इच्छा विष्णु ग्रंथि तथा जो आपको पसंद नहीं है, उससे छुटकारा पाना ही रुद्र ग्रंथि कहलाता है। इस तरह, यही तीनों मनुष्य के जीवन के तीन प्रमुख तत्वों का प्रतिनिधित्व भी करते हैं : काम से जुड़े भाव (सकारात्मक व नकारात्मक) तथा विनाशक विचार। मैं आपको इनके बारे में और गहराई से बताना चाहूँगा।

## ब्रह्म ग्रंथि

ब्रह्मा सृजन का प्रतिनिधित्व करते हैं और वे ही वंश वृद्धि का पक्ष भी रखते हैं। इस प्रकार यह कोई संयोग नहीं, ब्रह्म ग्रंथि आपके स्वाधिष्ठान चक्र, जनन अंगों में पाई जाती है। कुंडलिनी रीढ़ की हड्डी के आधार से, मूलाधार चक्र से आरंभ होती है — जहाँ सबसे अधिक स्नायु जाल पाया जाता है।

किसी भी मनुष्य में कुछ रचने की इच्छा ही सर्वोपरि और बलशाली इच्छा होती है, क्योंकि इस इच्छा का सीधा संबंध, आपके भीतर छिपी रचनात्मक ऊर्जा को मुक्त करने से जुड़ा है। आप इसे सेक्स या काम वासना का नाम दे सकते हैं। काम केवल आपकी वासना को शांत करने का दूसरा नाम नहीं है, यह आपका सबसे रचनात्मक पक्ष भी है। प्रकृति आपको विवश करती है, आपको बारंबार उन मार्गों की खोज के लिए उकसाती है, जहाँ आप अपनी रचनात्मक ऊर्जा का प्रयोग कर सकते हैं। प्रकृति का एकमात्र धर्म है, विकास और इस सृष्टि के प्रत्येक जीव को इसके अनुसार ही रचा गया है।

किसी भी साधक के लिए सबसे पहली चुनौती यही होती है कि उसे काम संबंधी विचारों व इच्छाओं से उबरना होता है। इस बात से मेरा यह तात्पर्य नहीं कि आप आजीवन ब्रहमचर्य साध लें। हो सकता है कि आपको आरंभिक चरणों में इसका अभ्यास करना पड़े। आपके विचारों को एक उचित दिशा देने के लिए ही संयम का अभ्यास किया जाता है। जब आप जानते हैं कि आप एक निश्चित समय के लिए किसी ख़ास चीज़ को नहीं पा सकते, तो ऐसे में आपके लिए अपने मन को नियंत्रित करना सरल हो जाता है।

मान लीजिए आप कोई महत्वपूर्ण पत्र या लेख लिख रहे हों और अचानक आपके स्क्रीन पर किसी ई-मेल के आने का संकेत आ जाए। आपके मित्र ने आपको एक लिंक भेजा है और उस लिंक पर क्लिक करते ही आपके सामने एक न्यूज़ वेबसाइट खुल जाती है। आप लेख को पढ़ कर ख़त्म करते हैं तो नीचे ही, उससे संबंधित लेखों के लिंक दिए गए हैं। आप उनमें से एक को क्लिक कर पढ़ने लगते हैं। उस लेख में एक और लिंक है, आप उसे क्लिक करते ही, दूसरी वेबसाइट पर चले जाते हैं। इससे पहले कि आप जान सकें, तीन घंटे बरबाद हो गए हैं और अपने अभी तक उस महत्वपूर्ण पत्र को पूरा नहीं किया, जिसे आप सबसे पहले लिखने बैठे थे। कल्पना करें कि अगर उस पत्र लेखन के दौरान आपका सब कुछ बंद होता तो आपके सामने अन्य कोई रुकावट न आती। संयम भी कुछ ऐसा ही है। मानो आप कुछ समय के लिए अपना मोबाइल इत्यादि बंद कर रहे हैं, ताकि उस काम पर एकाग्र हो सकें, जिसे आप करने जा रहे हैं।

मैं आजीवन ब्रह्मचर्य रखने को नहीं कहता क्योंकि मेरे अनुसार यह अनावश्यक और अप्राकृतिक है। मैं असंख्य ब्रह्मचारियों से मिला हूँ और उनमें से एक भी अपनी अवस्था से प्रसन्न नहीं था, वे सभी इससे जूझ रहे हैं। तो जब मैं सेक्स से ऊपर उठने की बात करता हूँ तो मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आपको अपने साथ पूरी तरह से सहज होना होगा, अपनी काम संबंधी इच्छा व काम के मूल को समझना होगा।

साधना के दौरान, आपके भीतर विचारों का ज्वार उमड़ पड़ेगा — काम संबंधी, उत्तेजना, वर्जना संबंधी और काम विकृति संबंधी। उन्हें बाहर आने दें, किसी तरह की प्रतिक्रिया न दें; अपने वर्तमान केंद्र के चक्र पर अपना ध्यान रमाए रखें। आपने अपने काम संबंधी अनुकूलन या विचारों को नहीं चुना। आपके उनके साथ ही जन्मे थे। आप अपने विचारों को जितना रोकने या उनसे दूर जाने का प्रयास करेंगे, वे उतना अधिक सताएँगे।

मुझे अपने बचपन की एक घटना याद है, एक बूढ़ा आदमी था और बच्चे अक्सर उसे चिढ़ाते थे क्योंकि वह बहुत बुरी तरह से चिढ़ता था। वह अपनी छड़ी उठा कर, उनके पीछे भागता। वे उसका मज़ाक उड़ाते (जानता हूँ कि यह सब ग़लत था)। वे उसे इसलिए ही चिढ़ाते थे ताकि वह खीझ कर उनके पीछे भागे। एक बार वह किसी तीर्थयात्रा पर गया और कुछ माह बाद वापिस आया। जल्दी ही, उसने प्रतिक्रिया देना और खीझना बंद कर दिया और कुछ समय बाद ही बच्चों ने भी उसकी खिल्ली उड़ाना बंद कर दिया। जब आप प्रतिक्रिया नहीं देते, तो आपके भीतर से एक सहजता का भाव पैदा होता है। विरोध कहीं तिरोहित हो जाता है। जब आप किसी चीज़ का विरोध करते हैं, तो आपको अपने बल को दुगना करना पड़ता है, इससे आप थक कर निरुत्साहित हो जाते हैं।

संयम को किसी उपवास की तरह लें, जब आपका मन जानता है, मुझे नौ दिन तक भूखा रहना होगा,। मान लेते हैं, पहले दिन, आप बिल्कुल ठीक रहते हैं। दूसरे दिन आपके लिए यह थोड़ा कठिन होगा और आने वाले चार दिनों में तो यह और भी कठिन हो जाएगा। आपके दिमाग में लगातार भोजन से जुड़े विचार ही आते रहेंगे। 'बस, कुछ ही दिन रह गए।' आदि-आदि। नवें दिन के अंत में, जब आपको भोजन करने का अवसर मिलेगा, तो इस बात की संभावना अधिक है, कि आप सामान्य भोजन से कहीं अधिक मात्रा में भोजन कर लें, सेक्स भी मन और शरीर के लिए भोजन का काम करता है।

एक बार मेरे पास एक व्यक्ति आए। उनकी आयु सत्तर के मध्य रही होगी। उन्हें इस बात से बहुत परेशानी थी कि उनके मन में अब भी कामवासना आती थी और वे यौनरूप से सक्रिय थे। वे इस बारे में बहुत लज्जित अनुभव करते थे।

उन्होंने कहा, "मैं कई वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त हो चुका हूँ पर अब भी मन में यौन संबधी विचार आते हैं।"

मैंने कहा, "इसमें कोई हर्ज़ नहीं, आपके शरीर और जनन अंगों को तो नहीं पता कि आप रिटायर हो गए हैं।"

मैंने आगे कहा, "सेक्स भी भोजन की तरह है, जब तक आप भोजन करते रहेंगे, आपका शरीर सेक्स की माँग भी करता रहेगा। मन कभी रिटायर नहीं होता।"

"तो, इस तरह मैं एक बुरा व्यक्ति साबित नहीं होता?"

“इसके विपरीत, आप तो एक सामान्य व्यक्ति हैं। आपको किसी ऐसी चीज़ के बारे में शर्मिंदा होने की ज़रूरत नहीं, जिसे आपने अपने लिए नहीं चुना।”

मन को इससे कोई अंतर नहीं पड़ता कि आप काम से रिटायर हो गए हैं या आप वरिष्ठ नागरिक बन गए हैं; यह तो हमेशा की तरह जीवंत रहता है। जिस तरह आपके मन में कोई अच्छी चीज़ खाने या बढ़िया कपड़ा पहनने की इच्छा हो सकती है या कहीं बाहर जाने का मन हो सकता है। आपके मन में इसी तरह यौन संबंध बनाने की इच्छा आ सकती है। अगर आप इन्हें अनावश्यक महत्व नहीं देते, तो ये भी अन्य विचारों की तरह ही हैं — वे सामने आते हैं, एक क्षण के लिए ठहरते हैं और ओझल हो जाते हैं।

कुल मिला कर कहा जा सकता है कि ब्रह्म ग्रंथि केवल काम संबंधी ग्रंथि नहीं है, ब्रह्मा केवल प्रजनन का नहीं बल्कि सृजन का भी प्रतिनिधित्व करते हैं। अगर हमारी रचनात्मक ऊर्जाओं को निखारने के लिए केवल सेक्स ही पर्याप्त होता, तो आज हम ऐसी चूहा दौड़ का हिस्सा न होते। भले ही कोई धनी हो या निर्धन, करोड़पति हो या अरबपति, एक स्थानीय मंत्री हो या प्रधानमंत्री, प्रत्येक व्यक्ति अपने लिए यथासंभव बड़े से बड़ा हिस्सा पाने की कोशिश में जुटा है। वे कुछ रचना चाहते हैं, जो कर चुके हैं, उससे कहीं अधिक, कुछ करना चाहते हैं। और यही इस ग्रंथि का दूसरा पक्ष है : कुछ रचना।

ब्रह्म ग्रंथि सृजन, विस्तार व गुणन का प्रतिनिधित्व करती है। इसमें कोई संदेह नहीं कि लाखों लोगों को प्रतिदिन कड़ा परिश्रम करना पड़ता है ताकि वे अपना पेट भर सकें। इसके साथ ही, ऐसे लाखों लोग मौजूद हैं, जो निरंतर धन का संग्रह कर रहे हैं, पदोन्नितयों, बड़े घरों, बड़ी कारों आदि की आस लगाए बैठे हैं। वे और अधिक अर्जन करने के लिए कड़ा परिश्रम करते हैं और फिर वे और अधिक व्यय करते हैं, फिर वे और अधिक कमाते हैं ताकि अपने सारे व्यय पूरे कर सकें। यही इक्कीसवीं सदी की बुद्धिमता और जीवनशैली हो गई है।

मैं यह नहीं कह रहा कि यह सही या ग़लत है; यह आपका निजी चुनाव है। जब हम चक्र साधना करते हैं, तो आपको और अधिक पाने की इच्छा के लोभ से मुक्त होना होगा। आभार और सजगता चीनी काँटों की तरह हैं। आपको भोजन के लोभ को रोकने के लिए दोनों चाहिए।

जब एक साधक उन्नति करते हुए यौन व सृजन संबंधी विचारों से ऊपर उठता है, तो उसका मन शांत व स्थिर होने लगता है, व्याकुलता के बवंडर शांत हो जाते हैं और भीतर से प्राकृतिक रूप से अहोभाग्य सामने आता है। “सही मायनों में, मेरे पास सब कुछ है। जिस प्रकार पूरी तरह से खिला हुआ फूल मधुमक्खी को स्वयं ही आकर्षित करता है, सृजन और प्रजनन से परे से गया हुआ मन भी अलग तरह के विचारों को अपनी ओर खींचता है।” अब दूसरी ग्रंथि में उलझी, अलग प्रकार की इच्छाएँ मन में उपजती हैं।

## विष्णु ग्रंथि

कहीं न कहीं, हमारे भीतर स्थायित्व पाने की गहरी इच्छा ही कष्टों का मूल है। हम इस जगत के अस्थिर स्वभाव के साथ आरामदेह महसूस नहीं करते। हम अपने आनंद, सुख व उपलब्धियों को शाश्वत बना देना चाहते हैं। हमें यह विश्वास करने में कठिनाई होती है कि सब कुछ अस्थायी है।

हम अपने प्रियजन को कभी खोना नहीं चाहते और यदि हम उन्हें अपने साथ रख पाते, तो शायद उन्हें हमेशा अपने साथ ही रखना चाहते। किसी चीज़ को थामे रहने, और हमारे पास जो भी है, उसे संभाले रखना ही हमारी हार्दिक इच्छाओं में से एक है।

ऐसी इच्छा ही हमें सीमित करती है, यह हमें बांधती है। यही दूसरी ग्रंथि है — विष्णु ग्रंथि। विष्णु का स्थान हृदय चक्र में है।

सदैव प्रसन्न रहने की हमारी इच्छा के आधार पर, हम लगातार काम करते रहते हैं और ऐसे काम करते रहते हैं कि हमारी पराजय न हो। यही आसक्ति ही सारे भावों का मूल है और भाव ही, किसी भी साधक के लिए दूसरी बड़ी बाधा है। जब आप ध्यान के दौरान अपने मन को शांत करते हैं, तभी आप अपने भावों के प्रति सबसे अधिक सजग होते हैं। वे केवल सकारात्मक या नकारात्मक भाव नहीं बल्कि दोनों का ही मिश्रण हैं, क्योंकि ये वे विचार हैं जिन्हें आपने नहीं छोड़ा और अब उन्होंने आपके हृदय में स्थान बना लिया है। आपको पश्चाताप, अपराध बोध, गुस्से, जलन, ईर्ष्या, बैर, आनंद, शांति व आदि से हो कर गुज़रना पड़ता है।

जब आप अपने विचारों को बाहर नहीं आने देते और वे भीतर ही भीतर कुलबुलाते हैं, तो वे इच्छाएँ या भावों में बदल जाते हैं। विष्णु सृष्टि के पालक हैं। आपकी इच्छाएँ और भाव ही जीवन का आधार हैं। एक पल के लिए इस बारे में सोचें — हममें से अधिकतर लोग केवल उस दिशा में काम कर रहे हैं जिसे हम पाना चाहते हैं या हमें जिसकी परवाह है। इच्छाओं तथा भावों की ग्रंथियाँ किसी भी गंभीर साधक के लिए दूसरी बाधा बन जाती है।

क्या आपको इच्छाओं का त्याग कर, भावों से रहित हो जाना चाहिए? सच तो यही है कि इच्छा और भाव हमें मनुष्य बनाते हैं, वे हमें वह बनाते हैं, जो हम हैं। इच्छाओं और भावों से पूरी तरह मुक्ति पाना इतना सरल नहीं है। हो सकता है कि आपके मन में धनी या प्रसिद्ध बनने की लालसा न हो पर इसका अर्थ यह नहीं कि आप इच्छा से मुक्त हो गए हैं।

आज कुछ अलग खाने की इच्छा, अपने प्रियजन से बात करने की इच्छा, कोई फ़िल्म देखने की इच्छा, अपना मनोरंजन करने की इच्छा — ये सब इच्छाएँ ही तो हैं। आपको अपनी किसी इच्छा को पूरी करने में जितना श्रम करना पड़ता है, वह उतना ही आनंद देती है, संतुष्टि का अनुभव देती है। इसका अर्थ यह नहीं कि आपका वह अनुभव लंबे समय तक बना रहेगा। इसका सीधा सा अर्थ यही है कि जब आपको इससे अधिक परिश्रम करना होगा और किसी चीज़ को पाने से अधिक संतुष्टि मिलेगी, तो वह आनंद का अनुभव और अधिक हो जाएगा।

हमारे पास जो भी आता है, उसे हम कैसे स्वीकारते हैं, उसी से हमारी भावात्मक अवस्था परिभाषित होती है और यही अवस्था, इन परिस्थितियों के बदले में हमारी प्रतिक्रिया को प्रभावित करती है। कोई आपकी आलोचना करता है तो आप उसे स्वीकार या अस्वीकार नहीं कर सकते। इससे आपके भीतर नकारात्मक भाव पैदा होगा। हो सकता है कि इससे आपको नीचा महसूस हो या आप आलोचक की निंदा करें। इस मानसिक अवस्था में, हो सकता है कि आप कुछ ऐसा कहें या करें जो आप सामान्य अवस्था में न करते। अगर आप चुपचाप अपनी निंदा को स्वीकार करते हुए, अपने मन से बाहर जाने दें तो आपके भीतर नकारात्मकता नहीं उपज सकती। किसी भँवर की बजाए शांत ताल में तैरना ज़्यादा आसान है। जब आप इस बात को समझ लेते हैं कि चक्रों पर ध्यान देते हुए आपको भावों और विचारों पर प्रतिक्रिया देने की

आवश्यकता नहीं है, तो वे आपके लिए थोड़े कम गहन हो जाते हैं। जब उनकी गहनता घट जाती है, तो वे कोई भँवर नहीं बल्कि एक शांत ताल बन जाते हैं और तब आप देख सकते हैं कि तल में क्या पड़ा। सब कुछ पारदर्शी तरीके से स्पष्ट हो उठता है।

आपके भावों से क्षणिक तरंगें तो उठेंगी किंतु वे बड़े भँवर नहीं बनेंगे। जब आप अपने काम संबंधी विचारों से ऊपर उठते हुए, भावों से विलग होंगे, तो आपको अवशेष दिखाई देने लगेंगे। विचारों की एक अंतिम और तीसरी श्रृंखला आ कर आपके ध्यान को भंग करती है।

## रुद्र ग्रंथि

गंभीर साधक के जीवन में एक ऐसी अवस्था भी आती है, जब वे अपने काम संबंधी विचारों से नहीं जूझते, जब उनके मन में किसी के भी प्रति नकारात्मक भाव नहीं होते। यह एक ऐसा चरण है, जब वे सही मायनों में कृतज्ञ हो उठते हैं। जिस तरह मन स्थिरता का अनुभव पाने लगता है, ठीक उस समय जब वे चट्टान के तल को देखने योग्य होते हैं, उसी समय वे विचारों की एक और श्रृंखला में फँस जाते हैं। नहीं, ये विचार कुछ अधिक पाने या कुछ अधिक बनाने से नहीं जुड़े, ये किसी को नुकसान पहुँचाने से भी नहीं जुड़े, ये तो उनसे भी बदतर हैं। ये आत्म-विनाशक भाव हैं, जो साधक को बहुत ही संवेदनशील बना देते हैं। ये आपको अधूरेपन का एहसास दिलाते हैं और आपको लगने लगता है कि आप कभी भी इस अधूरेपन से उबर नहीं सकेंगे। आपके मन की आँखों के सामने आपके दुर्बल क्षण, असफलताएँ और अतीत नाच उठता है और आप अपने भीतर छिपी समृद्धि की बजाए उन बातों पर केंद्रित होने लगते हैं जो आपके पास नहीं हैं।

तीसरी ग्रंथि रुद्र ग्रंथि कहलाती है। यह आज्ञा चक्र के ठीक बाद है। शिव की भूमिका संहारक की है, यह संहार अनिवार्य तौर पर विनाश नहीं बल्कि समापन के रूप में भी होता है। इस ग्रंथि को खोलने के लिए दोहरी प्रक्रिया को अपनाना होगा। पहले, आपको अपनी विनाशक सोच से उबरना होगा, आपको एहसास हो जाए कि आपको अपने अतीत को थामे रहने की आवश्यकता नहीं है, आप समझ सकें कि आप अपने बीते हुए कल को, आने वाले कल पर हावी नहीं होने देना चाहते। जब आप उस सजगता और वचनबद्धता के साथ ध्यान लगाते हैं, तो विनाशक विचार उसी तरह ओझल हो जाते हैं, जैसे ताली की तेज़ आवाज़ से पक्षी डर कर उड़ जाते हैं। दूसरी अवस्था इस बोध से जुड़ी है कि सारे विचार अपने-आप में ख़ाली होते हैं। इनमें कोई सार नहीं होता और अगर मैं उन्हें महत्व नहीं देता तो वे अपने-आप कुछ नहीं कर सकते। अगर आप ध्यान से देखें, तो आप पाएँगे कि हर दिखाई देने वाली वस्तु का एक मूल, एक निश्चित जीवन अवधि तथा समापन का एक बिंदु है। यह ग्रंथि आपके मस्तिष्क में है क्योंकि वे कहते भी हैं कि यह सब आपके दिमाग के भीतर है। आप कुछ निश्चित भावों को अनुभव कर सकते हैं, आपके मन में इच्छाएँ हो सकती हैं, आप शारीरिक आत्मीयता की इच्छा रख सकते हैं। अगर आप अपने मस्तिष्क से उस सोच को निकाल सके, तो इच्छा या भाव इस तरह तिरोहित हो जाएँगे मानो उनका कभी कोई अस्तित्व था ही नहीं।

इसी ग्रंथि को खोलना सबसे कठिन होता है। यही आपके लिए सबसे कठिन राह है। रुद्र ग्रंथि को खोलने से आप चक्र ध्यान के समय उठने वाले विचारों को भी समाप्त करते हैं। यही

कुंडलिनी जागरण की अंतिम अवस्था है और सबसे गहन भी है। दृढ़ समर्पण, लगन और एकाग्रता के साथ साधक को शिव की तरह योगी बनना पड़ता है ताकि इस ग्रंथि को खोला जा सके। जब आप प्रगति करने लगते हैं, तो आप बिना किसी प्रयास के अपनी सोच के लिए सजग होने लगते हैं। जिस तरह एक पक्षी स्वाभाविक तौर पर उड़ सकता है और एक मछली प्राकृतिक तौर पर तैर सकती है, उसी तरह आप भी प्राकृतिक तौर पर सजग हो जाते हैं।

भले ही कोई ग्रंथि कितनी कठोर या उलझी हुई क्यों न हो, आप इसे खींचे बिना नहीं खोल सकते। कुंडलिनी ध्यान में कुंठा या अधैर्य का कोई काम नहीं है। एक गंभीर साधक जानता है कि उसे कितना धीरज रखना होगा। हमें ग्रंथि की पड़ताल के बाद, दृढ़ किंतु सहज भाव से उसे खोलना होगा। इस तरह आपको ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र ग्रंथि को देखना चाहिए। थोड़ी पड़ताल, थोड़ा निरीक्षण, बहुत सारा धैर्य और प्रयास; इन सबके मेल से आप इस ग्रंथि को खोल सकेंगे। तब कोई ग्रंथि इतनी कठोर नहीं रह जाती। अगर आप इस पथ पर चलते हुए, धैर्य न हारें, तो आप वही नतीजे पा सकते हैं, जो आप पाना चाहते थे।

यही कारण है कि मैं इसे कोई दर्शन नहीं बल्कि चक्र विज्ञान कहता हूँ। इसमें एक सुनिश्चित कारण तथा प्रभाव का संबंध है। इस दिव्य लीला में कुछ भी कारण तथा प्रभाव के बिना नहीं घटता। सब कुछ बहुत ही सुंदरता के साथ आपस में जुड़ी हुई, अंतः निर्भर तथा पक्षपात से परे है।

# शिव एवं शक्ति का संयोग

कुछ करोड़ों वर्ष पूर्व, जब धरती के महाद्वीपों को सागरों ने अलग नहीं किया था और सारी धरती एक महाद्वीप के रूप में थी, तब एक वीर और बलशाली राजा सुसेन का शासन था। अपने साम्राज्य को दूर-दूर तक फैलाने और स्वयं को एक चक्रवर्ती सम्राट के रूप में स्थापित करने के लिए, उनके राजकीय सलाहकारों ने परामर्श दिया कि उन्हें अश्वमेध यज्ञ रचाना चाहिए।

अश्वमेध यज्ञ केवल बहुत ही बलशाली और महान राजा ही कर सकते थे। इस तरह वे दूसरे राज्यों व शासकों पर अपनी प्रभुसत्ता लागू कर सकते थे। सबको अपने अधीन बना सकते थे। एक राजकीय अश्व को विचरण करने के लिए छोड़ दिया जाता और राजा का सैन्य दल व सेनापति अश्व के पीछे चलते। वह जिस भी क्षेत्र में जाता, उसे राजा के अधीन मान लिया जाता। अगर कोई शासक इस नई सत्ता को चुनौती देता और अश्व को बंदी बनाता तो उसे रक्तरंजित संग्राम में प्राण देने पड़ते।

सुसेन का अश्व सुदूर प्रांतों तक जा पहुँचा। किसी भी राजा में इतना साहस नहीं था कि उसे चुनौती देता। कई सप्ताह बीत गए और उनके राज्य ने अनेक नए राज्यों को अपने में मिला लिया। एक दिन, अश्व सरोवर के पास पानी पीने के लिए खड़ा हुआ। वह स्थान वन में स्थित शांत आश्रम के निकट था और उसके निकट ही गंड नामक एक विशाल पर्वत था। सरोवर से कुछ ही दूरी पर, बरगद का पुराना वृक्ष था और वह बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ था। उस वृक्ष तले एक दैदीप्यमान ऋषि निश्चल भाव से समाधि मग्न थे, उनका नाम गण था।

अपने परिवेश से अनजान, गण किसी चट्टान की तरह अडोल थे, उनकी कुंडली सहस्रार में स्थित थी और वे उसी तरह अमृतपान कर रहे थे जिस प्रकार कोई बालक माता का स्तनपान करता है। राजा के अनेक मंत्री सैन्य दल के साथ थे, उन्होंने उसी सरोवर के निकट डेरा डाल दिया और ऋषि के प्रति सम्मान भी नहीं प्रकट किया। वे मदिरापान करते हुए, आपस में बातें करने लगे। सिपाहियों ने ही कुछ ही दूरी पर खेमे गाड़ दिए।

गण के पुत्र, स्वयं एक महान तपस्वी तथा ऋषि थे, उन्होंने इस अनावश्यक घुसपैठ और दंभ को देखा। वे अपने पिता के प्रति असम्मान के भाव को सह नहीं सके।

वे गरजे, “मूर्खों! तुम भी अपने राजा की तरह मदमत्त हो। जाओ, उसे जा कर कह दो कि मैंने अश्व को बंदी बना लिया है।”

मंत्रियों ने इस चेतावनी को गंभीरता से नहीं लिया और सिपाहियों को आदेश दिया गया कि उस तपस्वी को उसी समय बंदी बना लिया जाए।

युवा तपस्वी ने देवी जया का रहस्यमयी मंत्र जाप किया और अपनी ओर बढ़ रहे सिपाहियों को क्षण भर में भस्मीभूत कर दिया। यह सब बहुत तेज़ी से हुआ, अभी कुछ मंत्री तो अपने अश्वों पर सवार भी नहीं हुए थे। वे भय से काँपते हुए, तपस्वी के पैरों पर गिर पड़े और उससे क्षमा याचना करने लगे। उसने एक भी शब्द नहीं कहा। वह अश्व को ले कर पर्वत की ओर गया और देखते ही देखते ऐसे अलोप हो गया जैसे मृत्यु के समय, देह से आत्मा अलोप हो जाती है। उन्होंने गण के आगे प्रणाम किया, जो अब भी अपनी समाधि में मग्न थे, और वे राजा के पास लौट गए।

सुसेन ने सारी बात सुनी और अपनी बुद्धि व बल के लिए विख्यात छोटे भाई महासेन से

कहा कि वह ऋषि के पास जा कर, विनम्र भाव से क्षमा याचना करे।

उन्होंने कहा, "किसी सैन्य दल को साथ मत ले जाना। उनके पास किसी साधक की तरह जाओ।"

महासेन शीघ्र ही आश्रम के लिए रवाना हो गए और कुछ सप्ताह की यात्रा के बाद वहाँ जा पहुँचे, ऋषि अब भी समाधिलीन थे। उनका पुत्र कोने में खड़ा हो कर इस तरह रक्षा कर रहा था, जैसे पलक आँख की रक्षा करती है। महासेन ने ऋषि को साष्टांग दंडवत किया और सुगंधित पुष्पों, मेवों, मिष्टान्न तथा रेशमी दुशाले से सजी टोकरी उनके चरणों में रख दी। इसके बाद वे दोनों हाथ जोड़ कर बैठ गए और प्रतीक्षा करने लगे।

गण के पुत्र को महासेन का यह विनीत स्वभाव बहुत भाया।

"हे सज्जन पुरुष! आप क्या चाहते हैं? मैं इनका पुत्र हूँ।"

महासेन ने उन्हें भी प्रणाम निवेदित किया और मंद स्वर में बोले, "यदि आप आज्ञा दें तो क्या मैं आपके पिता से बात कर सकता हूँ?"

"में भी आपकी मनोकामना पूरी कर सकता हूँ। आप जो चाहेंगे, वही मिलेगा। मैं वचन देता हूँ।"

महासेन ने उत्तर दिया, "मैं आपका आभारी हूँ। कृपया मुझे अपने पिता से बात करने का अवसर प्रदान करें।"

"मेरे पिता इस केवलनिर्विकल्प समाधि में लीन हैं, सभी चक्रों का भेदन करते हुए, उनकी कुडंलिनी सहस्रार तक जा पहुँची है और वे सभी भौतिक तत्वों तथा अपने शरीर की सभी माँगों से परे और ऊपर जाते हुए बैठे हैं। वे बारह वर्ष तक अवस्था से बाहर नहीं आएँगे। लगभग पाँच वर्ष बीत गए हैं और अभी सात वर्ष का समय शेष है।"

उन्होंने आगे कहा, "चूँकि मैंने आपको अपना वचन दे दिया है इसलिए मैं विचार का स्थानांतरण करूँगा ताकि उनकी महाचेतना की अवस्था में तरंग पैदा हो सके।"

युवा ऋषि आलथी-पालथी लगा कर बैठ गए और गहन ध्यान में डूब गए। एक मुहूर्त, अड़तालीस मिनट बाद, उन्होंने महासेन को देख कर कहा, "अब मेरे पिता श्री अपने मन के लिए सजग हो गए हैं, वे किसी भी क्षण अपने नेत्र खोल देंगे।"

उनका वाक्य पूरा भी नहीं हुआ था कि गण का स्वर सुनाई दिया, "महासेन! दीर्घायु भव!"

महासेन ने ऋषि के चरण थाम लिए और अपने राज्य की ओर से क्षमा माँगने लगे।

गण ने अपने पुत्र को उसके बर्ताव के लिए फटकारा और कहा कि वह अश्व को शीघ्र ही मुक्त कर दे। अपने पिता के सम्मुख क्षमायाचना और पश्चाताप करने के बाद, युवा तपस्वी पर्वत की ओर गया। फिर वह देखते ही देखते उसमें गायब हो गया और जब वापिस आया तो यज्ञ का अश्व उसके साथ था।

महासेन ने स्वयं को चुटकी काटी और आँखें मलीं, वे अपनी आँखों पर यकीन नहीं कर पा रहे थे मानो कोई सपना देख रहे हों। अविश्वास का कोई कारण ही नहीं था, अश्व उनके सामने खड़ा था। उन्होंने युवा ऋषि से पूछा, "हे महान तपस्वी! मैंने अभी आपको पर्वत के बीच अलोप होते देखा और फिर जाने कहाँ से अचानक प्रकट भी हो गए।"

गण ने किसी नटखट बालक की तरह मुस्कुराते हुए कहा, “इन्हें भी अपना पर्वत दिखाओ। इनकी आयु बहुत लंबी है।”

अश्व को रस्सी से बाँध कर, युवा तपस्वी महासेन को पर्वत के निकट ले गए।

महोसन अवाक् खड़े थे। उन्होंने कहा, “आइए! हम भीतर प्रवेश करें।”

“प्रवेश! कैसे?” वे सोचने लगे। वहाँ तो कोई द्वार ही नहीं था।

उनके मन की बात जानने के बाद तपस्वी बोले, “यह मेरी रचना है और मेरे संसार का अनुभव पाने के लिए आपको मेरी चेतना की अवस्था में आना होगा।”

यह कह कर, वे महासेन के मन में प्रवेश कर गए और चेतना का विस्तार कर दिया। जल्दी ही, महासेन को अपना शरीर एक ठोस के रूप में नहीं बल्कि अरबों-खरबों नन्ही ईकाईयों के रूप में दिखने लगा, जिनमें से प्रत्येक ऊर्जा का मार्ग भर था; दरअसल उनमें से प्रत्येक ऊर्जा था। वे अनायास ही तपस्वी के पीछे चल दिए और दोनों ने पर्वत में एक साथ प्रवेश किया।

महासेन तो दंग रह गए, उनके आश्चर्य शब्दों में भी प्रकट नहीं हो सकता था। वह भीतर से कोई पर्वत नहीं था, वह तो अपने-आप में पूरा ब्रह्माण्ड था। उसमें अरबों चमचम करते तारे, चंद्रमा, नदियाँ, पर्वत, वृक्ष, पक्षी, मछलियाँ, स्तनपायी जीव तथा सरीसृपों का वास था, उसमें सब कुछ था। वह एक विशाल रचना थी।

वे एक से दूसरे स्थान पर, प्रकाश की गति से यात्रा करते रहे। रात के बाद दिन निकला और सूर्य की रश्मियों में, ऋषि की रचना का सौंदर्य दुगना हो उठा। महासेन इतने विस्तार को देख भयभीत हो उठे। वे उन असंख्य सागरों व अंतहीन वनों की यात्रा के दौरान ऋषि का हाथ थामे रहे। उन्हें भय था कि वे कहीं खो ही न जाएँ। इसी तरह पूरा दिन बीत गया, महासेन को न तो भूख लगी और न ही थकान महसूस हुई।

“अब हमें चलना चाहिए।” ऋषि बोले।

“यह सब कितना अद्भुत है, यह तो एक अनूठा ब्रह्माण्ड है। कृपया, क्या हम यहाँ एक और दिन नहीं ठहर सकते?” महासेन ने आग्रह किया।

ऋषि हँस दिए और बोले, “महासेन, मेरा विश्वास करें, हमें वापिस जाना ही होगा।”

उनकी आज्ञा का पालन करते हुए, महासेन पीछे चल दिए और जल्दी ही वे दोनों पर्वत से बाहर थे।

बाहर तो सब कुछ अलग दिखाई दे रहा था। केवल पुराना वृक्ष वहीं था और गण उसी तरह साधना में लीन थे, जैसा वे उन्हें छोड़ गए थे। उसके अतिरिक्त वहाँ कोई सरोवर नहीं था, एक बड़ी सी नदी वेग से बह रही थी। अश्व का कोई अता-पता नहीं था। वृक्ष भी अलग दिखाई दे रहे थे, कुछ तो बहुत ही बूढ़े हो गए थे। पशु और वानर आदि भी वैसे नहीं दिख रहे थे, जैसे वे एक दिन पूर्व थे।

महासेन ने पूछा, “हम कहाँ हैं? मैं महान ऋषिवर को तो देख सकता हूँ किंतु यह स्थान इतना अनजाना सा क्यों दिख रहा है?”

“यह तो वही स्थान है।” ऋषि ने उत्तर दिया।

“यह केवल एक ही दिन में इतना कैसे बदल सकता है?” महासेन ने अविश्वास से पूछा। उन्हें संदेह था कि कहीं ऋषि यहाँ भी अपनी कोई लीला तो नहीं दिखा रहे थे!

गण के पुत्र हँसे और फिर गंभीर होते हुए बोले, “महासेन, समय तो सापेक्ष होता है। मेरा संसार, तुम्हारे संसार के कालचक्र से अलग चलता है।”

महासेन इस तरह स्तंभित दिखे मानो कोई बालक मेले में खो गया हो। उन्हें युवा ऋषि की बात पर विश्वास नहीं हो रहा था।

तपस्वी ने उनकी दुविधा को भांपते हुए स्पष्ट किया, “महासेन, धरती पर बारह हज़ार वर्ष का समय बीत चुका है।”

“बारह हज़ार वर्ष!”

“हम्म! मेरे ब्रह्माण्ड का एक दिन, यहाँ के बारह हज़ार वर्ष के समान है।”

“मेरे भाई, मेरी पत्नी, मेरे बच्चों और राज्य का क्या हुआ?” महासेन ने इस तरह पूछा मानो अभी-अभी सपने से जगे हों, यह भावना पूरी तरह से ग़लत भी नहीं थी।

“महासेन! वे सब तो चले गए,” ऋषि बोले। “समय का पहिया कभी किसी के लिए नहीं रुकता।”

महासेन वहीं ढह गए मानो किसी लता से वृक्ष का अवलंब छीन लिया गया हो, उन्होंने अपना सिर दोनों हाथों में थाम लिया, वे किसी बालक की तरह रो रहे थे।

“सुनो, महासेन! तुम कौन व किसके लिए रो रहे हो, यहाँ तो कुछ भी स्थायी नहीं है। महासेन! यह धरती, सितारे, सूर्य, ब्रह्माण्ड तुम्हारे भाई, परिवार, तुम्हारी देह या ऐसा कुछ भी जिसे तुम छू सकते हो, देख सकते हो, सूंघ सकते हो, सुन सकते हो या महसूस कर सकते हो; इनमें से कुछ भी तो शाश्वत नहीं है।”

“यहाँ कोई भी मर नहीं रहा और न ही जीवित है। यह सब एक बड़ा भ्रम है। क्या तुम्हें दिखता नहीं? तुम्हें तो मेरा वह संसार भी असली लगा था, वह मेरी चेतना से सिरजा गया था। ठीक इसी तरह, यह संसार भी सामूहिक चेतना का ही सृजन है। मेरे पिता को देखो, वे अब भी वहीं उपस्थित हैं, हज़ारों वर्षों बाद भी, क्योंकि उन्होंने ऊर्जा के स्त्रोत को पा लिया है। उनके शरीर में कोई गतिविधि नहीं थी इसलिए कोई परिवर्तन या क्षय भी नहीं हुआ।”

उनके शब्दों ने, महासेन के दुखी हृदय के लिए मलहम का काम किया और उन्होंने रोना बंद कर दिया। वे उस तरह शांत हो गए, जिस तरह किसी प्यासे राही को, रेगिस्तान में शुद्ध जल पी कर शांति मिल जाती है।

ऋषि आगे बोले, “मन स्थिर होने पर शाश्वत हो जाता है। गतिविधि के अभाव में परिवर्तन हो ही नहीं सकता। सत्य स्थिर है, तभी तो वह शाश्वत है।”

“हे ऋषि! कृपा करें, मुझे उस सत्य को देखने में सहायता प्रदान करें।” महासेन युवा तपस्वी के चरणों में लोट गए।

उन्होंने उत्तर दिया, “हे श्रेष्ठ बुद्धि! आप जिन वस्तुओं को अपनी इंद्रियों के माध्यम से अनुभव करत हैं, वह सत्य नहीं है। सत्य को देखा नहीं जा सकता, इसे अनुभव करना पड़ता है। यह धरती पर सूर्योदय की तरह प्रकट होता है।”

“मुझे उस सत्य का अनुभव पाने के लिए क्या करना चाहिए?”

“जाओ, जा कर ध्यान करो। अपने भीतर छिपी ऊर्जा को जाग्रत करो ताकि तुम्हें आत्मबोध हो सके और तुम अपने ही ब्रह्माण्ड के स्वामी बन सको।”

महासेन ऋषि के चरणों में बैठे और ऋषि ने उन्हें ब्रह्माण्ड के सभी रहस्यों से अवगत कराते हुए चेतना की तीनों अवस्थाओं — जागृति, स्वप्न तथा निद्रा के विषय में विस्तार से बताया। ऋषि के बुद्धिमतापूर्ण वचनों से सशक्त व सत्य को जानने की तीव्र लालसा के साथ, महासेन वन में जा कर, घोर तप करने लगे। उन्होंने तब तक तप किया जब तक उन्हें आत्मबोध नहीं हो गया। वे कुंडलिनी के सहस्रार तक पहुँचने की प्रतीक्षा में स्थिर भाव से बैठे रहे। महासेन ने अपनी ही अनंत बुद्धिमता को पा कर, अपने लिए प्रबोध अर्जित किया।



कुंडलिनी का जागरण, आपकी अपनी विशुद्ध अमूर्त बुद्धिमता का बोध है, यह आपके भय, भावों तथा चिंताओं से परे होती है। यह आपकी सौम्य प्रकृति है। जब आप ऊर्जा के इस सुप्त स्त्रोत को पाने के योग्य हो जाते हैं, तो आप सही मायनों में अपने संसार के स्वामी हो जाते हैं। आप अपने जीवन में मनचाहे परिणाम ला सकते हैं क्योंकि अब आपकी चेतना का दायरा, केवल आपकी देह तक सीमित नहीं रहा; यह सारे संसार पर व्याप्त हो गया है।

यदि आप ध्यान दें, तो आप पाएँगे कि भले ही किसी दिन कितनी भी गर्मी क्यों न हो, सूरज की उजली और गर्म किरणें किसी को जलाती नहीं हैं। वस्तुएँ गर्म हो सकती हैं, पिघल सकती हैं पर उनमें आग नहीं लगती। वहीं दूसरी ओर, यदि आप सूर्य के प्रकाश को एक लेंस से गुज़ारें तो आप एक मिनट के भीतर ही चिंगारी पैदा कर सकते हैं। किसी भी बाधा से रहित यह केंद्र, उसी सूर्य के प्रकाश को एक गहरी किरण में बदल देता है।

आपकी कुंडलिनी भी जाग्रत होते समय, ऐसी ही गहन हो उठती है। आपके मेरूदंड में स्थित सुप्त ऊष्मा के बादल से ले कर, यह एक किरण के रूप में बदलने लगती है और फिर सबसे अधिक शक्तिशाली हो जाती है। जब तक यह आपके सहस्रार तक आती है, यह एक विशाल शक्ति के स्त्रोत से जा मिलती है। विचारों, इच्छाओं, भावों, भय व फोबिया से मुक्ति पाते ही, यह आपको एक साधक, एक पारंगत व्यक्ति और एक सिद्ध में बदल देती है, जिसके आदेश से सब कुछ संभव हो सकता है।

कुंडलिनी की सुप्त ऊर्जा हम सबके भीतर उसी तरह समाई है जैसे लकड़ी में अग्नि छिपी रहती है। हमारे भय तथा संस्कार हमें पीछे रोके रखते हैं। वे हमारी रचनात्मक ऊर्जा को सबसे निचले चक्र की ओर धकेल देते हैं और हम अपने जीवन का हिस्सा, छोटी बातों की पूर्ति के लिए ही इस शक्ति का उपयोग करते रह जाते हैं। हम जितने समय तक जीवित रहते हैं, उसमें से अधिकतर समय अपने-आप से या दूसरों से लड़ते हुए ही बीत जाता है। संसार से लड़ने और अपने मन में नकारात्मकता को भरने की कोई तुक नहीं बनती। हमारे पास यह चुनाव रहता है कि हम उसी पथ पर चलें जो हमारे लिए रचनात्मकता और ऊर्जा को लाने माध्यम बन सके।

## पुरुषोचित व स्त्रैण ऊर्जाओं पर निपुणता पाना

शिव की उलझी हुई जटाओं की प्रत्येक लट, हमारी सोच की शक्ति की ओर संकेत करती है और सहस्रार उनकी जटाएँ हैं। योगी अपने सिर के हर बाल से, वीरभद्र, भद्रकाली तथा स्त्रैण व पुरुषोचित ऊर्जाओं को प्रकट कर सकता है, जो आपकी ओर से, आपके लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक होंगी।

सती का विध्वंस, कुंडलिनी की शक्ति, आपके सुप्त बल का सूचक है, जो इतना शक्तिशाली है जो आपको भी जला सकता है, आपके भीतर के मिथ्या भाव को जला सकता है। आप सोच सकते हैं कि आपके भीतर मिथ्या क्या है? हमारे अधिकतर लेबल जैसे बहन, भाई, बेटी, बेटा, माता, पिता, पति, पत्नी आदि हमें गढ़ते हैं, और हमारे व्यवहार को निर्देशित करते हैं। परंतु, इन भूमिकाओं से परे, एक स्त्री या पुरुष होने से परे, आपके अपने शरीर से भी परे, हमारी विशुद्ध ऊर्जा है, यही ऊर्जा हमारे अस्तित्व और क्षमता का आधार है।

योगी अपने-आप में अधूरा है क्योंकि वह केवल अपने संकटों और बाकी सबको ही जला सकता है। शिव ने मन्मथ को भस्म कर दिया था। परंतु यह दीर्घकालीन हल नहीं क्योंकि हमारे संकट या कष्ट भी संभावित ऊर्जा हैं। केवल वे दिशाहीन हैं। उन्हें सही दिशा देना, उचित मार्ग दिखाना और नियमित करना ही बेहतर होगा। और ऐसा करने के लिए, हमें अपने भीतर बसी प्रतिकूलता के प्रति सहज होना चाहिए।

शिव और शक्ति का संयोग देवों की रक्षा के लिए हुआ, यह आपकी उन शक्तियों का सूचक है, जो कुंडलिनी और सहस्रार की भेंट के समय प्रकट होती हैं, जब आपके विपरीत ध्रुव भीतर ही भीतर अपने स्त्रोत से मिल जाते हैं, क्योंकि देव आपके सद्भाव हैं। वे इंद्र के अधीन हैं। इंद्री का अर्थ है इंद्रिय और आपका मन इंद्रियों पर शासन करता है। यह आसानी से डर जाता है, यह अपना बचाव करने लगता है। यही वजह है कि जब भी कोई गहन तपस्या करने लगता है तो इंद्र भयभीत हो उठते हैं। गहन तप से वाचाल मन पूरी तरह से शांत हो जाता है।

दानव या राक्षस हमारे स्वार्थी पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं, हमारे आवश्यकता से अधिक आत्म-चिंतन, हमारे नकारात्मक भाव और हमारे दुर्भाव है। इनके कारण मन भटकता है, क्योंकि दानव देवों को कुचल देते हैं, परंतु जब शिव जैसे योगी का शक्ति से संयोग होता है, तो उस संयोग से चेतना की एक अवस्था उभरती है, जो दानवों कोवा में कर लेती है। धर्म अधर्म को परास्त कर देता है।

चक्रों का भेदन तथा कुंडलिनी जागरण इतना दायित्वपूर्ण कृत्य है, जिसे कोई भी, केवल इसी कारण से अपना सकता है कि एक योगी अपने भावों तथा भावनाओं के लिए संसार को दोषी नहीं ठहराता। ऐसा करने से कोई भी अपनी संभावना के शिखर तक नहीं जा सकता। एक योगी अपने ही भीतर सारे उत्तरों की तलाश करता है क्योंकि यदि मैं सही मायनों में अपने ब्रह्माण्ड का स्वामी हूँ तो मुझे एक सम्राट की तरह ही सोचना चाहिए, काम करना चाहिए और पेश आना चाहिए।

ललिता सहस्रनाम में पहला शब्द है, श्रीमाता, दिव्य माता ही मेरी अंतिम शरणस्थली हैं। और कुंडलिनी की तरह, वे आपके भी भीतर हैं। योगी कहते हैं, "मुझे स्वयं अपना आश्रय खोजना चाहिए।" अगला शब्द है, 'श्रीमहाराज्ञी'। जिस क्षण में, मैं स्वयं को अपने स्वामी के रूप में देखता और अनुभव करता हूँ, कुंडलिनी का सहस्रार से मेल करती है, वह सम्राज्ञी हो जाती है।

तब आप अपने ही संसार के स्वामी हो जाते हैं।

ललिता सहस्रनाम में तीसरा नाम है, श्री-मत-सिंहासनेश्वरी, और फिर आप पूरी अनुकंपा, संकल्प तथा भव्यता के साथ अपने ही सिंहासन पर विराजते हैं। चौथा नाम है, 'चिद्-अग्नि-कुंड-सम्भूता-देव-कार्य-समुद्यता।' तब आप विशुद्धि के ऐसे स्तर पर आ जाते हैं, जहाँ केवल आपकी विचार शक्ति मात्र से आप महान कार्य कर सकते हैं। वह शक्ति आपके विशुद्ध मन के अग्नि कुंड से किसी चिंगारी की तरह प्रकट होती है।

जब सब कुछ आपके भीतर है, तो आपके पास क्या नहीं है? जब ब्रह्माण्ड का स्त्रोत आपके भीतर कुंडलिनी के रूप में छिपा है और सहस्रार तक जाने की प्रतीक्षा में है, तो ऐसा क्या है जिसे आप प्राप्त नहीं कर सकते? आप स्वयं ही चुनाव करें कि आप दक्ष की तरह दंभी और क्रोधी बनना चाहते हैं या सती के समान निष्ठावान, शिव के समान योगी या फिर महासेन के समान साधक, गण और उनके पुत्र के समान ऋषि बनना चाहते हैं। ये आपके अपने चुनाव हैं। अपने-आप को भीतर से उठने दें और आप इनमें से कुछ भी हो सकते हैं। 'उदय-भानु-सहस्र-आभा-चर्तु-बाहु-समन्विता', पाँचवें नाम का अर्थ है कि अपने जीवन के चारों पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) पूरे करने से आप बुद्धिमता, विवेक व सत्य से इस प्रकार प्रकाशित हो उठेंगे, मानो हज़ारों सूर्य एक साथ चमक उठे हों।

जाइए! अपनी क्षमता का जागरण कीजिए ताकि आपको बोध हो सके कि आप कौन हैं। कैसे, आपने पूछा?

अब आप चक्रों तथा कुंडलिनी के शाब्दिक, वास्तविक और गुह्य अर्थ जान गए हैं, मैं आपको दिखाता हूँ कि इस दिव्य ऊर्जा को कैसे जाग्रत कर सकते हैं।

# देवी का जागरण

## वास्तविक *साधना*

मुझे अच्छी तरह याद है, बाहर बहुत ज़ोरों से हिमपात हो रहा था। कोई पक्षी नहीं चहचहा रहे थे, मेरी कुटिया के बाहर से सूअरों के गुर्राने का स्वर सुनाई नहीं दे रहा था, हिरणों का स्वर भी नहीं सुनाई दे रहा था। वृक्ष नहीं झूम रहे थे, वायु नहीं बह रही थी। मेरी कुटिया की छत और बाहर धरती पर चुपचाप रुई के फाहों सी बर्फ पड़ रही थी और नीरव सन्नाटे के सिवा कुछ नहीं था। गहन सन्नाटे को, गहन ध्यान के लिए उपयुक्त परिवेश माना जा सकता है। परंतु उस उपयुक्त परिवेश के बावजूद, उस एकांत और गहन मौन के बीच भी, मेरा मन अशांत था, वह बहुत व्यग्र था।

कई माह बीत गए थे और कई हज़ार घंटों तक ध्यान लगाने के बावजूद, मैंने अपने चक्रों पर किसी भी तरह की संवेदना अनुभव नहीं की थी। मेरे भीतर कुंडलिनी जागरण का कोई संकेत नहीं था। उस दिन तक, केवल लंबे समय तक बैठने के कारण शरीर में होने वाली ऐंठन और पीड़ा का ही उपहार मिला था और इसके अतिरिक्त वन्य प्राणी मेरे चिरंतन सखा हो गए थे।

मैं स्थिर था पर नेत्रों से अश्रुओं की धारा प्रवाहित हो रही थी। पहली कुछ बूँदें तो बढ़ी हुई दाढ़ी में ही खो कर रह गईं पर जब उनका प्रवाह नहीं थमा, तो वे मेरी छाती पर गिरने लगीं। वे पहले तो गर्म लगतीं और फिर ठंडी हो जातीं। वे मेरे ध्यान में बाधा बन रही थीं पर मैं उन्हें रोक नहीं पा रह था। हथेलियाँ गोद में टिकी थीं और पास ही जंगली चूहे धमाचौकड़ी मचा रहे थे। वे आसपास ऐसे चक्कर लगा रहे थे मानो मेरी प्रदक्षिणा कर रहे हों। इसमें मेरा कोई मनोरंजन नहीं हो रहा था। मेरी आँखों से उसी तरह आँसुओं की झड़ी लगी रही, जैसे आकाश से वर्षा की बूँदें गिरती रहती हैं।

ये श्रद्धा या परमानंद के अश्रु नहीं थे। मैं रो रहा था क्योंकि मैं बुरी तरह से निराश हो कर, थक चुका था। इस समय मैं जिस निराशा से गुज़र रहा था, उसके आगे तो वह कष्ट और पीड़ा कुछ भी नहीं थी जब मैंने अपने ही काम को छोड़ कर, पाँच विविध समय अंतरालों में काम करने का अनुभव पाया था। यह कोई आम थकान नहीं थी, मैं उदास था क्योंकि मैं अपनी ओर से हर संभव प्रयास कर चुका था और फिर भी वहीं खड़ा था, जहाँ से पहले दिन चला था।

जब से मैं हिमालय पर गया था, तभी से पूरे अनुशासन के साथ ध्यान की कड़ी दिनचर्या का पालन करता आ रहा था; इसमें एक बार भी व्यवधान नहीं आने दिया था। चौबीस घंटों में नाममात्र का भोजन लेता था ताकि शरीर में आलस्य न आए। अधिकतर शून्य से नीचे के तापमान में रहते हुए भी, प्रतिदिन बर्फीले जल से स्नान करता। मैं थोड़ी-थोड़ी देर की झपकियाँ लेता ताकि अपना अधिकतर समय गहन तपश्यर्चा को दे सकूँ।

मैं फ़र्श पर ही बैठता और सोता था, किसी भी आरामदायक बिछौने के अभाव में, मेरे लिए निरंतर सजगता को बनाए रखना आसान हो जाता। मैं भूल ही गया था कि कुर्सी पर बैठना कैसा लगता है। महीनों बीत गए थे, मैंने न तो भरपेट भोजन किया था और न ही बिस्तर पर सोया था। मेरी कुटिया जीर्ण-शीर्ण अवस्था में, सभ्यता से बहुत दूर बनी थी। बर्फीली हवा, मेरी हड्डियों से उसी तरह निकलती जैसे किसी स्पंज से पानी निकलता है। वहाँ बिजली, समुचित शौचालय या नल के पानी की सुविधा नहीं थी। वह एक प्राचीन काल जैसा वातावरण था, वैसा जिसमें कभी महान ऋषि-मुनि रहते होंगे।

बाहरी जगत से पूरी तरह संपर्क तोड़ कर, किसी भी मनुष्य के संपर्क से दूर, मैं कड़े मौन और एकांत के बीच साधना कर रहा था। मैंने यथासंभव, हर चीज़ का परित्याग कर दिया था, केवल मेरा अपना जीवन एक अपवाद था और फिर भी, कहीं से कोई प्रकाश किरण नहीं दिख रही थी। मुझे यह नहीं लगा कि प्राकृतिक बल मेरी परीक्षा ले रहे थे। मुझे लगा कि वे मेरा अपमान कर रहे थे। जी हाँ, मैंने स्वयं को अपमानित अनुभव किया क्योकि सभी तर्कों व कारणों से परे, मैं अपने मन की पुकार को पूरा करने के लिए, सब कुछ पीछे छोड़ आया था। हो सकता है, मैंने ही ग़लत नंबर मिला दिया था या फिर शायद मेरी तड़प ही झूठी रही होगी।

और मैं नहीं जानता था कि इनमें से कौन सी बात अधिक अपमानजनक थी — यह मान कर वर्षों की साधना को त्याग देना कि वह मेरी अंधभक्ति थी और मैंने एक व्यर्थ काज के लिए जीवन नष्ट किया या यह जाने बिना, अपनी साधना को जारी रखना कि उसमें कोई सत्यता थी भी या नहीं। परंतु, मैं एक बात जानता था। अगर मुझे अपने ही सत्य के अन्वेषण का एक भी अवसर मिल सकता था, तो वह इस तरह सब कुछ छोड़ने से तो कभी नहीं मिल सकता था।

एक बार फिर से, पूरे संकल्प के साथ, मैंने अश्रु पोंछे, अपने संकल्प को दोहराया और गहरी लगन और विश्वास के साथ ध्यानमग्न हो गया। आप यह न मान लें कि मनोबल बनाए रखने के बारे में सोचते ही, मेरा पथ आसान हो गया। इसके विपरीत, मेरा संकल्प जितना पक्का होता गया, भीतर के आलोचक का स्वर भी उतना ही मुखर होता गया। मेरे पास विश्वास था, पर मेरे पास एक संदेही मन भी था जो सदैव तर्क और कारण की तलाश में रहता था।

मेरे प्रश्न करने वाले मन की बजाए संदेही मन से अधिक परेशानी थी। हम सबके पास दो मन होते हैं, आप जानते हैं। हमारा सकारात्मक मन सुंदर कस्तूरी हिरण की तरह है। यह भावों तथा विचारों के वन में अपनी सुगंधि फैलाते हुए दौड़ता है। यह बहुत ही फुर्तीला, तेज़ गति वाला और आत्मविश्वास से भरपूर होता है। यह किसी से नहीं टकराता। यह अपनी राह स्वयं बनाता है। दुर्भाग्य से, हमारा नकारात्मक मन, आत्म-संदेह और नकारात्मकता के दो लंबे सींगों वाले बदसूरत तिलचट्टे जैसा है। यह हमारी आशा के सुंदर व्यंजनों और हमारे सपनों के सुंदर घर में घूमता रहता है। यह बहुत तेज़ी से पनपता है। यह आपको लगातार याद दिलाता रहता है कि आप यह काम नहीं कर सकते या आप कुछ भी पाने के अधिकारी नहीं हैं।

आप आशा और सपनों के महल संजोते हैं, पर आत्मसंदेह की एक लहर या अपराध बोध का एक झटका आते ही सब रेत के ढेर में बदल जाता है। इसे आप तट से अलग करके भी नहीं देख पाते। और आप स्वयं को रेत के एक कण की तरह देखने लगते हैं, जैसे समंदर के किनारे, इस संसार में सभी देखते हैं। आपको लगने लगता है कि आपके भीतर कोई खूबी नहीं है, आप कोई महल नहीं बना सकते या उसमें नहीं रह सकते।

मेरे लिए साधना का पथ भी कुछ ऐसा ही था। कभी-कभी लगता कि मैं प्रगति कर रहा था और कई बार सब कुछ निरर्थक लगने लगता। एक दिन, मैं अपने-आप को महान योगी मानने लगता तो हिमालय की कठोर जलवायु को भी जीत सकता था, कोई ऐसा योगी जिसे हिंसक पशुओं का भय नहीं था, एक योगी जो चूहों, कुतरने वाले जीवों, बिच्छुओं और सर्पों के बीच फ़र्श पर सो सकता था। अगले ही दिन, ऐसा लगने लगता मानो मेरा उपहास किया जा रहा था, मुझे ऐसे मूर्ख की तरह देखा जा रहा था जो अपना सब कुछ त्याग कर, जीवन की सारी सुख-

सुविधाओं से परे, किसी जंगली गुहामानव की तरह सभ्यता से दूर आ गया था।

“तुम कर क्या रहे हो? क्या पाने की आस रखते हो? क्या तुम्हें सचमुच लगता है कि तुम इस युग और समय में कुंडलिनी जगा सकते हो? क्या तुम्हें लगता है कि ईश्वर प्रत्यक्ष रूप से दर्शन देंगे? तुमने मुझे बुरी तरह से तोड़ दिया है, तुमने! मैं तुम पर भरोसा नहीं कर सकता। इतनी शिक्षा और ज्ञान पाने के बाद भी ऐसी मूर्खतापूर्ण बातों पर भरोसा रखते हो!”

अक्सर मेरा मन साधना के बारे में ऐसे ही संदेहों और सवालों की झड़ी लगा देता। यह मेरे भरोसे को तोड़ने और मनोबल को कमजोर करना चाहता था। यह कई बार सफल भी हुआ पर वह क्षणिक और अस्थायी ही रहा।

धीरे-धीरे, मैंने जाना कि यह कोलाहल के अतिरिक्त कुछ नहीं था। यह मेरे मन का आधारहीन प्रलाप था जो मेरी पसंद या नापसंद पर आधारित नहीं था। यह किसी विक्षिप्त की तरह, लगातार बड़-बड़ करता रहता और इसे चुप कराने का एकमात्र उपाय यही था कि इसकी ओर ध्यान ही नहीं दिया जाए। मैंने तय किया कि अपने संदेहवाद से लड़ने की बजाए उसे उपेक्षित करना होगा। मैंने अपना पूरा ध्यान पलटा और सारी चेतना को साधना के लिए केंद्रित कर दिया। मैंने आत्म-संदेह पर विश्वास को प्रश्रय दिया। मैंने स्थगन की बजाए अनुशासन को चुना। मैंने निराशा के स्थान पर आशा का चुनाव किया। मैं उसी तरह ध्यान करता रहा, जैसे गंगा अंतहीन रूप से प्रवाहित रहती है।

इसी दौरान, मानूसन आ कर चला गया। पतझड़ के आने से हरे-भरे पर्वत उजाड़ दिखने लगे। शुष्कता और भयंकर शीत ऋतु आ रही थी। दिन बहुत छोटे हो गए थे। शीत ऋतु के आने की सूचना मिल चुकी थी। अधिकतर दिनों तक हिमपात होता रहता। परंतु, अंततः, सभी मौसमों की तरह, वे दिन भी बीत गए। सूरज अब लंबे समय तक धरती पर टिकने लगा था, दिन पहले से कहीं ज़्यादा धूप से चमकने लगे थे। वृक्षों पर सुंदर लाल, सफेद और जामुनी रंगों की छटा दिखने लगी। नन्हे फूलों ने सारी धरती को ढांप दिया। पुराने वृक्षों पर नई पत्ते उग रही थीं।

प्रकृति को देख कर ऐसा लगता था मानो वह अपने जीवन के सबसे महत्वपूर्ण क्षण के लिए सज रही हो। चारों ओर गिलहरियाँ, सर्प, हिरण, जंगली सूअर, लंगूर, नेवले, खरगोश और विच्छु दिखने लगे। यह किसी विशाल उत्सव जैसा दिखता था। बसंत आ पहुँचा था। पर मेरा अपना हृदय अब भी उसी तरह बंजर था जैसे शीत ऋतु में हिम से ढका कोई बाग — हिमशीतल और शुभ्र। मेरे अस्तित्व में कोई समरसता, धुन या ताल नहीं थी। मैं अब भी एक संघर्षशील साधक था, जो अपने ध्यान की क्लांतिकर दिनचर्या से चिपका हुआ था। मैं अब भी अपने पूरे साहस और बल को संजोते हुए ध्यान लगा रहा था।

बसंत ने भी अपनी यात्रा समाप्त की और फिर से अपनी दैवीय माता की गोद में लौट गया, और अब पुनः वर्षा होने लगी थी। प्रकृति की हर चीज़ अपना रूप बदल कर, आगे बढ़ चुकी थी। सब कुछ और हर चीज़, बस एक मैं ही अपवाद था। मैं अब भी वहीं था, जहाँ से चला था — कुछ समझ नहीं आ रहा था। समय-समय पर कुछ अनुभव और झलकियाँ तो सामने आते पर इनमें से कुछ भी ऐसा नहीं था जो निरंतर व अटल हो।

तब तक, मैं अपने सारे चक्रों व सहस्रार तक असाधारण व गहन संवेदनाओं को अनुभव कर चुका था, परंतु वे मेरा ध्यान सत्र समाप्त होते ही ओझल हो जाते। मुझे यह स्वीकार नहीं था।

मानो आपने परिश्रम से लाखों डॉलर अर्जित किए हों परंतु आप उन्हें केवल तब तक ही व्यय कर सकते हों, जब तक आप बैंक में हों। जिस क्षण आप भवन से पैर बाहर निकालेंगे, आपके खाते का शेष शून्य पर आ जाएगा।

मैं उस महाचेतना, उस असाधारण सजगता की अवस्था का अनुभव पाने के लिए मरा जा रहा था, जब आप अपने आसपास की हर वस्तु के साथ एकाकार अनुभव करने लगते हैं, वह महा संयोग, जो सदा आपके साथ बना रहता है। मेरे अनुसार, यही सच्ची समाधि का शाश्वत परमानंद था। यह मेरी आध्यात्मिक संपदा, मेरी देवी, कुंडलिनी जागरण था। मैंने इस स्थायी परमानंद को पाने के लिए।

अस्थायी भौतिक जगत को त्याग दिया था और अगर यह भी एक अस्थायी भाव था, तो मुझे भी गाँजा चढ़ा कर प्रसन्न रहना चाहिए था।

छिटपुट अनुभवों तथा मिली-जुली गहन संवेदनाओं के अतिरिक्त मेरे पास कोई पूँजी नहीं थी।

और एक दिन!

मेरी टूटी झोंपड़ी की तिरपाल पर बारिश की बूँदें ऐसे गिर रही थीं जैसे व्याकुल मन में विचार तरंगें उठ रही हों। सौम्य हिमालयी जल के ये मोती, छत पर गिरते और फिर आपस में विलय होते हुए, पुनः जल बन जाते। उनमें से कुछ जल दरारों से रिस कर झोंपड़ी में आ रहा था और मेरे आसन से कुछ इंच की दूरी पर जमा होता जा रहा था। मैं पूरी तरह से सजग, किंतु अपने ही भाव में मग्न स्थिर बैठा था।

उस दिन की सजगता कुछ अलग ही थी; मैंने ऐसा अनुभव पहले कभी नहीं पाया था। मैं धरती पर गिरने वाली एक-एक बूँद को सुन सकता था। मैं दूसरी बूँद से उसके मेल को भी महसूस कर सकता था। मैं उन्हें आपस में मिलते और झोंपड़ी में छोटी खड्डे बनाने वाली दरारों के भीतर रिसने से पहले छोटी नालियों में बदलते भी देख सकता था। नेत्र तो अब भी बंद थे, मैंने झोंपड़ी की दूसरी ओर अपना ध्यान लगाया। अब वर्षा सुनाई नहीं दे रही थी, जबकि तिरपाल पर गिरती बूँदों का स्वर कानों को बहरा कर रहा था।

इसकी बजाए, मैंने एक दीवार पर रेंगते मकड़े को सुना। मैं भांप सकता था कि वह पतली टाँगों से कैसे सावधानी से चल रहा था। मानो उसकी आठों झबरी टाँगों में नन्हें सेंसर लगे हों क्योंकि वे पूरी लय और ताल के साथ उठ रही थीं। वे टाँगें आसपास के परिवेश का ऐसा जायज़ा ले रही थीं मानो उनका भी अपना दिमाग हो। मैं सुन सकता था कि मकड़ा किस तरह वायु में व्याप्त खतरों को सूंघते हुए आगे जा रहा था। मैं यह सब अपने मन की आँखों से इसी तरह साफ़-साफ़ देख रहा था जैसे कोई खुली आँखों से विशाल पर्वत को देखे। मैं मकड़े की हर गतिविधि को सुन सकता था। तभी मन में एक संदेह उठा। क्या यह सब असल में घट रहा था या मेरी कल्पना मात्र थी?

मैंने अचानक अपने नेत्र खोल दिए और मकड़े की दिशा में देखा। वह वहीं थी और ठीक उसी तरह चल रहा था, जैसे मैंने देखा था। मैंने बाहर की ओर ध्यान दिया तो पाया कि वर्षा का कानफोडू स्वर फिर से सुनाई देने लगा था, मानो वर्षा की हर बूँद उसी तरह अपनी हाज़िरी भर रही हो जैसे कक्षा में छात्र करते हैं।

चारों ओर व्याप्त इस सजगता के बीच, आप एक ऐसे संयोग को अनुभव करते हैं, जो शब्दों से कहीं परे है। मैं अपने आसपास की हर चीज़ को केवल सुन ही नहीं रहा था, मैं इसे महसूस कर रहा था। जो ऊर्जा पानी को चलायमान करती है, वही आपको भी चलाती है। वही जीवनी ऊर्जा जो एक मकड़े के दिल को धड़काती है, वही आपके दिल को भी धड़काती है। यह एक सामान्य सेतु है, ऊर्जा का अखंड प्रवाह, जिस पर ब्रह्माण्डीय अस्तित्व के मोती संजोए जाते हैं।

अस्तित्व व सजगता के अन्य आयाम धीरे-धीरे इस तरह खुलते जा रहे थे मानो सूर्योदय होते समय कमल की पंखुड़ियाँ खुल जाती हैं। लगभग पचहत्तर लाख प्रकाश वर्ष की दूरी पर, मुझे एक ग्रह के अस्तित्व का पता चला, जो हमारी पृथ्वी के आकार से ढाई गुना बड़ा था। पानी, हरियाली और सजीवों से भरपूर था। मैंने एक और ग्रह देखा, जो हमारे बहुत निकट, लगभग 500 प्रकाश वर्ष की दूरी पर था। कई माह बाद, जब मैं हिमालय से उतरा, तो यह पता चला कि नासा ने, कैपलर-22 नामक एक ग्रह होने की पुष्टि की है, जो पृथ्वी से लगभग 600 प्रकाश वर्ष की दूरी पर है। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ था। वे गहन संवेदनाएँ, वह जागरण, मेरे मन की स्थायी अवस्था बन चुके थे।

अब मेरे जीवन की नाव, परमानंद और समरसता के महासागर में बहुत ही आनंद से तैर रही थी। मैंने चलते हुए, बोलते हुए, खाते हुए, बात करते हुए, बैठे रहने के दौरान और कोई भी काम करते समय, इस नए परमानंद का अनुभव पाने लगा। अब मैंने अपना भंडार पा लिया था, मेरी संपदा मेरे भीतर थी। मुझे बोध हुआ कि कुंडलिनी वास्तव में होती है और इसका जागरण, देवी का बोध होने से कम नहीं है।

जब आप जागरण के पथ पर चलते हैं, तो आप देखने लगते हैं कि हमारे ब्रह्माण्ड में हर चीज़ किस तरह अंतःनिर्भर व अंतःसंबंध रखती है और इसका कोई अपवाद नहीं है। आपकी चेतना व आपकी अंतर्दृष्टि का दायरा निरंतर विस्तार पाने लगता है। जिस तरह नन्हे मकड़े की वह छोटी सी हलचल भी, मेरी चेतना में प्रवेश कर गई थी, आपको भी एहसास होने लगता है कि आपसे लाखों मीलों की दूरी पर स्थित, कोई छोटा सा भी कर्म भी, कैसे आपको प्रभावित कर सकता है या इसके विपरीत आप उसे प्रभावित कर सकते हैं।

यह अंतर्दृष्टि ही मुक्ति का बीज है। तब आप स्वयं को एक स्वतंत्र सत्ता के रूप में नहीं देखते, जो अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा हो। यह अपने-आप में मुक्त कर देने वाली भावना है और एक स्थायी प्रकार की गहन शांति व अवशोषण की ओर ले जाती है।

इससे भी ज़्यादा ख़ूबसूरत बात यह है कि जो भी कोई अपनी ओर से प्रयास करना चाहे, वह इस अनुभव को पा सकता है।

कुल मिला कर : यदि आप भी वही करते हैं, जो मैंने किया, तो आप वही पाएँगे, जो मैंने पाया। यही साधना का साधारण विज्ञान है। मैं आपको दिखाता हूँ कि वास्तविक अभ्यास कहाँ से आरंभ करना चाहिए।

## चक्रों की स्थिति

कुंडलिनी साधना आरंभ करने से पहले, आपको अपने शरीर में चक्रों की उचित स्थिति के बारे में

जानना होगा। छह चक्र और सहस्रार एक ही पंक्ति में हैं और उनके बीच का अंतर कुछ सेंटीमीटर से अलग हो सकता है, जो आपके शरीर की लंबाई, गठन और ढाँचे पर निर्भर करता है। चक्र की सटीक स्थिति का पता होना बहुत मायने रखता है। ऐसा करने से, आपके लिए सफलता पाने के अवसर बढ़ जाते हैं क्योंकि जब आप सही बिंदु पर ध्यान रमाते हैं, तो छह माह के भीतर वहाँ गहन संवेदना उत्पन्न होने लगती है।

आपको सिखाया जा रहा है कि आप अपने शरीर में चक्रों के उचित स्थान का पता कैसे लगा सकते हैं। यदि आप दाएँ हाथ से काम करते हैं तो दाएँ हाथ का प्रयोग करें और अगर आप बाएँ हाथ से काम करते हैं तो बाएँ हाथ का प्रयोग करें।

1. अपने हाथ की सबसे छोटी अंगुली नाभि पर रखें। आपकी नाभि, नाभि केंद्र या मणिपुर चक्र है।
2. अपने हाथ को पूरी तरह से ऊपर की ओर खींचें और देखें कि अंगूठे की नोक कहाँ स्पर्श करती है। यह आपका हृदय केंद्र व अनाहत चक्र है।
3. अब अपनी छोटी अंगुली ठीक उसी जगह रखें, जहाँ आपके अंगूठे ने हृदय केंद्र को स्पर्श किया था और एक बार फिर से अपने हाथ को पूरा फैलाते हुए यह देखें कि अंगूठा किस बिंदु को छू रहा है। यह आपका विशुद्धि चक्र है।
4. एक बार फिर अपनी छोटी अंगुली ठीक उसी जगह रखें, जहाँ आपके अंगूठे ने कंठ केंद्र को स्पर्श किया था और एक बार फिर से अपने हाथ को पूरा फैलाते हुए यह देखें कि अंगूठा किस बिंदु को छू रहा है। यह आपका आज्ञा चक्र है।
5. अपनी छोटी अंगुली ठीक उसी जगह रखें, जहाँ आपके अंगूठे ने भौंहों के मध्य केंद्र को स्पर्श किया था और एक बार फिर से अपने हाथ को पूरा फैलाते हुए यह देखें कि अंगूठा किस बिंदु को छू रहा है। यह आपका सहस्रार है।
6. अब नाभि पर वापिस जाएँ। अपने अंगूठे को नाभि पर रखें, अपने हाथ को नीचे की ओर फैलाएँ और अब आप अपने स्वाधिष्ठान चक्र को स्पर्श कर रहे हैं।
7. उस स्थान पर छोटी अंगुली रखें, जहाँ अभी आपका अंगूठा था और अपने हाथ को पूरी तरह से नीचे की ओर फैलाएँ। अब आपकी छोटी अंगुली जिसे छू रही है, वह आपका मूलाधार चक्र है।

यह ध्यान दें कि अंगुली से ले कर अंगूठे तक मापते समय आपके हाथ की गिरह पूरी तरह से खुली होनी चाहिए। जिस तरह आप अपनी बाँहें फैलाते हैं, तो आपके हाथ की मध्यमा अंगुली के पोर से ले कर दूसरे हाथ की मध्यमा के पोर तक की लंबाई, आपके शरीर की लंबाई जितनी होती है। एक से दूसरे चक्र के बीच भी एक गिरह का अंतर होता है। केवल आपका हाथ ही आपके शरीर में स्थित चक्रों की वास्तविक स्थिति का अनुमान लगा सकता है।

## चक्र ध्यान के पाँच तत्व

इस बिंदु से, हम उन सभी बातों से आपको परे ले जाना चाहेंगे, जो आपने आज तक, किसी भी पाठ्य में, चक्रों के बारे में पढ़ी हैं। सच्ची चक्र साधना में, पंखुड़ियों की संख्या, संबंधित इष्ट तथा

हर पंखुड़ी पर लिखे विविध वर्णों की कोई भूमिका नहीं है। एकाग्रता की गुणवत्ता, गहनता व अवधि ही एकमात्र कारक हैं। ऐसा कुछ भी जो आपको एकाग्रता बढ़ाने में सहायक हो, वह आपकी कुंडलिनी जागरण में सहायक हो सकती है।

यदि आप योग आसन (मुद्राओं), बंधों तथा मुद्राओं का अभ्यास करते हैं, तो उन्हें करना जारी रखें। वे आपके शरीर की फ़िटनेस से संबंध रखते हैं और वे लंबे समय तक शरीर के बैठने की योग्यता में सुधार करेंगे।

यदि आप प्राणायाम, श्वास नियमन या फिर कोई और व्यायाम करते हैं तो उन्हें भी करते रहें। ये सभी सहायक अभ्यास हैं, जो ध्यान में सहायक होंगे। हालांकि चक्र साधना के दौरान इनका योगदान या महत्व नाममात्र का ही है।

प्रत्येक चक्र के लिए, पाँच महत्वपूर्ण तत्व ऐसे हैं जो आपकी सफलता के अवसरों को प्रभावित कर सकते हैं :

## 1. मानसिक चित्रण

चक्रों पर लिखे प्रत्येक अध्याय में, मैंने प्रत्येक चक्र से जुड़े रंग के बारे में बताया है। केवल मानसिक चित्रण ही महत्व रखता है। आपको संबंधित इष्टों और अन्य उपादानों से उलझने की आवश्यकता नहीं है। अगर आप पंखुड़ियों की संख्या गिनते हुए, ध्यान का अभ्यास करना चाहेंगे तो एकाग्र होने में कठिनाई होगी। आपका मानसिक चित्रण जितना सादा होगा, ध्यान उतना ही प्रभावी होता जाएगा। हर चक्र के लिए केवल उसके रंग का मानसिक चित्रण करें और उस चक्र के स्थान पर ध्यान लगाएँ।

## 2. मंत्र

प्रत्येक चक्र का पवित्र वर्ण, ऊर्जा का एक सक्षम बीज है। जब आप मध्यम अवस्था में आ जाएँगे, तो आपको एहसास होगा कि प्रत्येक चक्र वास्तव में अपने बीज वर्ण के साथ गुंजरित होता है। यहाँ याद रखने योग्य महत्वपूर्ण बात यह है कि आप मानसिक चित्रण और मंत्रजाप एक साथ नहीं कर सकते। आपको प्रत्येक चक्र के लिए अपने समय को मानसिक चित्रण और चक्र साधना के बीच विभाजित करना होगा।

जब आपका अभ्यास गहन हो जाएगा, तो मानसिक चित्रण का अधिक से अधिक ध्यान करें और जब आप उससे थक जाएँ तो चक्र की मंत्र साधना पर आ जाएँ। लक्ष्य यही है कि चक्र पर आपकी एकाग्रता बनी रहे जबकि मन की सजगता बनाए रखना भी आवश्यक है।

## 3. मुद्रा

उचित मुद्रा के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। आपके शरीर की दस महत्वपूर्ण ऊर्जाएँ, आपके चिंतन, वाणी व कर्म को प्रभावित करती हैं। उचित मुद्रा और अंग विन्यास आपको, इन ऊर्जाओं को निर्देशित करने में मदद करता है ताकि वे सभी मिल कर, सबसे शक्तिशाली ऊर्जा

— कुंडलिनी के जागरण के लिए मार्ग बना सकें।

आदर्श रूप से, आपको आलथी-पालथी मार कर बैठना चाहिए पर अगर आप ऐसे नहीं बैठ सकते तो कुर्सी पर आरामदायक मुद्रा में बैठें। किसी भी दशा में, आपकी पीठ, किसी तीर की तरह सीधी होनी चाहिए। आपकी गर्दन हल्की सी झुकी हो और हाथ गोद में टिके हों।

ध्यान के दौरान, आपको किसी चट्टान की तरह स्थिर होना चाहिए। आपका मन जितना स्थिर होगा, स्वाभाविक तौर पर देह भी उतनी ही स्थिर होती जाएगी। इसका विपरीत भी उतना ही सत्य है। देह की स्थिरता, किसी योगी की प्रगति का सूचक है। अनावश्यक और ऊर्जा का क्षय करने वाली गतिविधियाँ जैसे पैर हिलाना आदि अपने-आप ही मिटने लगती हैं और उनका मन स्थिर होने लगता है।

## 4. एकाग्रता

अगर आप पहले तीन कारकों का अभ्यास करेंगे तो आपकी एकाग्रता में अपने-आप निख़ार आएगा। जब तक आप एकाग्र नहीं होंगे, कुंडलिनी का जागरण संभव नहीं है। एकाग्रता लाए बिना आपका ध्यान सफल नहीं हो सकता। यही कारण है कि पतंजलि ने भी ध्यान से पूर्व एकाग्रता को स्थान दिया है। एकाग्रता को आप ध्यान नहीं कह सकते।

दरअसल, अच्छी एकाग्रता आपको अच्छे ध्यान की ओर ले जाती है। एकाग्रता आपका केंद्र बनाती है और ध्यान के माध्यम से आप सजगता को बनाए रखने की कला सीखते हैं। चक्र भेदन की सफलता, ध्यान की गुणवत्ता पर टिकी है। आपकी एकाग्रता की गुणवत्ता जितनी अच्छी होगी, परिणाम उतने ही तुरंत तथा दीर्घकालीन होंगे।

## 5. आहार का नियमन

अगर आप ध्यान कर रहे हों तो चक्र साधना के दौरान आहार का भी ख़्याल रखना चाहिए। चक्र साधना के साथ, अपने आहार को भी चक्र के अनुसार नियमित करते चलें, जिस तरह एक-एक कर, सीढ़ी के पायदान चढ़ते हैं। चक्रों पर दिए गए अध्यायों में, मैंने हर चक्र के लिए अनुकूल भोज्य पदार्थों के बारे में भी बताया है।

किसी भी दशा में, मसालेदार, तैलीय व गरिष्ठ भोजन से बचें। शाकाहारी होने से आपको मदद मिलेगी क्योंकि शाकाहारी भोजन आपको सात्विक ऊर्जा प्रदान करता है।

# चक्रों पर ध्यान कैसे लगाएँ?

अपनी धुन के पक्के तथा गंभीर साधक के लिए, पहले दो चक्रों के भेदन यानी मूलाधार व स्वाधिष्ठान चक्र भेदन के लिए, प्रति चक्र एक वर्ष की एकनिष्ठ साधना की आवश्यकता होगी। इसके बाद वाले चक्रों के लिए छह-छह माह का समय माना जा सकता है। यह माना जा रहा है कि आप प्रत्येक वर्ष में प्रतिदिन, ध्यान के लिए दो घंटे का समय निकालेंगे। इन दो घंटों के समय को एक-एक घंटे की अवधि में विभाजित कर देना चाहिए या चालीस मिनट के तीन सत्र भी

किए जा सकते हैं।

आपकी पहली प्रतिक्रिया यही हो सकती है कि आप तो बहुत व्यस्त रहते हैं इसलिए आप ध्यान को इतना समय नहीं दे सकेंगे। भले ही आप थोड़ी अवधि से आरंभ करें परंतु सत्य तो यही है कि गहन साधना से ही परिणाम सामने आते हैं। और गहन ध्यान के लिए आपके पास कड़ी वचनबद्धता होनी चाहिए। हमें यह नहीं भूलना कि कुंडलिनी जागरण सबसे अधिक तुष्टिदायक व कठोर ध्यान साधनाओं में से है।

हम स्कूल में प्रतिदिन छह घंटे पढ़ाई करते हैं और ऐसा पंद्रह साल तक करते हुए एक मूल डिग्री हासिल करते हैं जो हमें एक नौकरी तक मिलने की गारंटी नहीं देती। जब आप नौकरी करते हैं, दिन आठ से दस घंटों के काम के बाद, माह के अंत में औसत वेतन मिलता है। पूरे वर्ष में दो या तीन सप्ताह का अवकाश हाथ आता है। एक औसत पियानोवादक को अपनी कला में निपुणता हासिल करने के लिए औसतन दस हज़ार घंटे अभ्यास के नाम करने होते हैं। कहना न होगा कि सभी कलाकार और संगीतज्ञ आजीवन अभ्यास करते रहते हैं।

ठीक उसी तरह, कुंडलिनी जागरण के लिए भी अभ्यास, प्रयास, समय और वचनबद्धता की आवश्यकता होगी। यहाँ मन को अच्छा लगने वाले ध्यान की बात नहीं हो रही, हम स्व के असाधारण रूपांतरण की बात कर रहे हैं। आप केवल कुछ रचने का लक्ष्य नहीं रखते, आप सीधा सृजन के स्त्रोत की ओर जा रहे हैं। कुंडलिनी साधना को पियानो सीखने या ओलंपिक में भाग लेने की तरह सोचें — अगर जीतना चाहते हैं तो आपको अपनी ओर से भरपूर प्रयास करना ही होगा।

मेरा निजी अनुभव यह रहा है कि अगर आप प्रतिदिन गुणवत्ता से भरपूर चक्र साधना के लिए सात घंटे का समय देते हैं, तो आप पहले छह माह में अपना महत्वपूर्ण अनुभव पा लेंगे। दूसरे शब्दों में, आपको पहले छह माह में अपने लिए बड़ी पदोन्नित मिल जाएगी। अपने अभ्यास के शिखर के दौरान, मैं प्रतिदिन, औसतन बाईस घंटों तक ध्यान लगाया करता था।

जब आप गहनता की एक निश्चित अवस्था तक आ जाते हैं, तो आपकी भूख, नींद, आदतें, मन और विचार प्रक्रिया महत्वपूर्ण रूप से रूपांतरित होने लगते हैं।

एक अटल साधक के रूप में, यह बहुत महत्व रखता है कि आप एक बार में, एक ही चक्र पर ध्यान साधें। जब आप एक चक्र को अपना लें, तब आपको दूसरे चक्र पर ध्यान देना चाहिए। जब आप एक चक्र पर छह माह तक ध्यान कर लें (मूलाधार तथा स्वाधिष्ठान के लिए एक-एक वर्ष का समय देना होगा) और आपको चक्र ध्यान के दौरान गहन संवेदनाओं का अनुभव होने लगे, तो आप अगले चक्र पर जाने के लिए तैयार हैं। आप दूसरी अवस्था तक कितनी तेज़ी से जाने वाले हैं, यह आपके प्रयासों की गहराई पर निर्भर करता है।

सभी व्यावहारिक प्रयोगों के लिए, मान लेते हैं कि आप प्रतिदिन ध्यान के लिए केवल दो घंटे का ही समय निकाल सकते हैं। तब आपका सत्र कुछ ऐसा दिखाई दे सकता है।

1. श्वास को सामान्य करने के लिए पाँच मिनट तक गहरी श्वास का अभ्यास करना।
2. ऊर्जाओं को नियमित करने के लिए आज्ञा चक्र पर दस मिनट का ध्यान करना।
3. आपके प्रधान केंद्र चक्र पर चालीस मिनट तक ध्यान लगाना।

4. शरीर को शिथिल करने के लिए पुनः पाँच मिनट तक गहरी श्वास का अभ्यास करना।

तीसरे बिंदु के दौरान, यदि आप थकान महसूस करें तो आप चक्र के रंग के मानसिक चित्रण तथा बीज वर्ण पर बारी-बारी से ध्यान कर सकते हैं। जब आप इस पथ पर अग्रसर होंगे, तो धीरे-धीरे, आपके भीतर हमेशा एक प्रकार की ध्यान से पूर्ण सजगता बनी रहेगी। तब आप स्नान करते हुए, गाड़ी चलाते हुए और खाना खाते हुए भी, पूरी सजगता के साथ ध्यान कर सकेंगे। इस तरह आपके मन में एक लय विकसित होगी। कोलाहल भी संगीत बन जाएगा।

प्रति सप्ताह, केवल छह दिन ध्यान करें। एक दिन का अवकाश लें। एक अच्छे ब्रेक से आपके मन को तरोताज़गी मिलती है। प्रतिदिन एक ही समय पर ध्यान आरंभ करने का अभ्यास करें। यदि चक्र साधना के दौरान, आप शराब और दूसरे नशीले पदार्थों का सेवन बंद कर दें, तो बहुत बेहतर होगा। ऐसा इसलिए है कि भले ही अल्पकालीन तौर पर, वे आपको ध्यान करने में लाभ दे सकते हैं परंतु वे मध्यम से दीर्घकाल की अवधि में आपकी मानसिक चित्रण करने व एकाग्र होने की योग्यता को बाधित कर देंगे।

✝

एक श्रद्धालु शिष्य ने अपने गुरु से ध्यान करना सीखा। वह कितनी भी कोशिश क्यों न करता, वह आरंभ में ध्यान लगा ही नहीं पाता था। हालांकि एक दिन, ध्यान के दौरान उसे गहरी तल्लीनता का आभास हुआ।

उसने प्रसन्नतापूर्वक कहा, “गुरु जी!, आज मेरा ध्यान बहुत अद्भुत रहा।”

गुरु जी बोले, “कोई बात नहीं, यह भी बीत जाएगा। बस ध्यान करते रहो।”

“मुझे लगता है कि मैंने ध्यान को जान लिया।”

“यह भाव भी बीत जाएगा।” गुरु जी ने कहा और अपना काम करने लगे।

शिष्य को बहुत हैरानी हुई कि गुरु जी ने हौंसला नहीं बढ़ाया और न ही उसकी प्रगति को सराहा। अगले कुछ दिन तक उसका ध्यान वाकई बहुत अच्छा रहा और जब उसे लगने लगा कि वह सही मायनों प्रगति कर रहा था, तो वह भीतर से भ्रमित और व्याकुल महसूस करने लगा। वह जितना अधिक प्रयास करता, ध्यान उतना ही बदतर होता जाता।

वह बहुत निराश हो कर गुरु के पास पहुँचा।

“गुरु जी! मैं तो ध्यान ही नहीं लगा पा रहा। मैं एकाग्र ही नहीं हो पाता।” उसने टूटे हुए दिल से कहा।

गुरु ने कोमल शब्दों में कहा, “चिंता मत करो, यह भी बीत जाएगा। बस अपनी राह पर चलते रहो।”

“पर मुझे लगता है कि ध्यान मेरे हाथों से निकल चुका है।”

“यह भाव भी मन से निकल जाएगा, ध्यान करते रहो।” गुरु का उत्तर था।

✝

जब आप कुंडलिनी जागरण के पथ पर हों, तो कुछ दिन आप थोड़ी संवेदनाएँ महसूस कर

सकते हैं, आपको लग सकता है कि आप तो सचमुच इस राह पर बहुत आगे आ गए हैं। अपने-आप को इस बहलावे में न आने दें। यदि आप उचित समय और अभ्यास के बिना ही, ऐसा महसूस करते हैं कि आप अगले चक्र पर ध्यान लगाने के लिए तैयार हैं, तो आप लगभग ग़लत होंगे। आपकी एकाग्रता की गुणवत्ता में निरंतरता विकसित होना बहुत आवश्यक है।

कुछ दिन तक, आपको ऐसा लग सकता है कि आप ध्यान कर ही नहीं सकते और ये ध्यान वगैरह आपके लिए नहीं बने। उस समय हिम्मत न हारें। बस थोड़ा अधिक ध्यान करें। हौंसला बनाए रखें। हार मानने से कभी जीत हासिल नहीं होती। पूरे संकल्प और सजगता के साथ ध्यान का अभ्यास जारी रखें और कुंडलिनी चक्र का भेदन करेगी। इसके सिवा कोई और उपाय ही नहीं है।

मूलाधार चक्र से आरंभ करें और एक बार में, एक कदम उठाते हुए प्रगति करें। जब भी आप किसी मील के पत्थर तक पहुँचेंगे, तो आपके भीतर एक दैवीय पक्ष उद्घाटित होगा, जिसके अस्तित्व के बारे में आपको पता तक नहीं था। धीरे-धीरे सामने आने वाला यह रूपांतरण ही आपको एक नए व्यक्ति के रूप में ढाल देगा, आपको एक बेहतर इंसान बनाएगा और आप अपने बारे में नई चीजें जान सकेंगे।

आप सोच सकते हैं कि क्या आप चक्रों से प्राप्त इन नई ऊर्जाओं के बल पर बेहतर संबंध, नौकरी, प्रदर्शन व मूड आदि में बदलाव पा सकते हैं? इसका उत्तर है, 'हाँ'। इसका अर्थ यह नहीं कि अगर आपको चीनी भाषा बोलनी नहीं आती तो आप चीनी भाषा के जानकार हो जाएँगे। इसका सादा सा अर्थ है कि आपके विचारों की शुद्धता व मन की स्पष्टता के साथ, आपके लिए, अपने लक्ष्यों तक जाना सहज व सरल हो जाएगा।

कुंडलिनी साधना के प्रत्येक चरण के साथ आप अपने भीतर चेतना के एक नए स्तर को उद्घाटित करते हैं। आपके विचारों की स्पष्टता में निखार आने लगता है। आपकी स्मरण शक्ति में सुधार होता है और आपके शरीर के भीतर एक अवर्णनीय स्थिरता का उदय होता है। आप स्वयं को कहीं अधिक व्यावहारिक पाते हैं, आपके लिए दूसरों की निंदा पर प्रतिक्रिया देना कठिन होने लगता है और आप अपने आसपास की गतिविधियों के बावजूद, अनायास ही सजगता बनाए रखने के योग्य हो जाते हैं। आप देखने लगते हैं कि आपकी सोच असल जीवन में साकार रूप ले रही है, आपके सामने प्रकट हो रही है।

आप बड़ी सहजता से मनोवांछित वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करने लगते हैं। आपके जीवन, जीवनशैली और जीवन-यापन के बीच निजता दिखाई देने लगती है। आप और आपके आसपास के लोग आपके भीतर एक निश्चित सकारात्मक बदलाव को देखने लगते हैं। आपकी अपूर्णता, किसी अंगूठे की तरह आपके सामने दिख रहे सूर्य या चंद्र को बाधित नहीं करती, वह अस्थायी बादलों की तरह हो जाती है, जो अपने-आप ही छँट जाते हैं। यहाँ तक कि आपकी अपूर्णताएँ भी नन्हे सितारों की तरह जगमग करते हुए, आपके अस्तित्व के ब्रह्माण्ड की सुंदरता में चार चाँद लगाने लगती हैं।

# सात चक्रों पर आधिपत्य

# मूलाधार चक्र

कुंडलिनी, शतदल वाले सहस्रार से अमृतपान करने के बाद, सबसे निम्नतम स्तर तक जा गिरी है; वही मूलाधार चक्र है। आपकी रीढ़ की हड्डी के सबसे निचले हिस्से में, यह मूलाधार चक्र कहलाता है। कुंडलिनी का जागरण, इसी चक्र के भेदन के साथ आरंभ होता है।

"मूलाधाराम्बुजारूढा
'पञ्चवक्त्रा' स्थिसंस्थिता,
अङ्कुशादिप्रहरणा वरदादिनिषेविता.
मुद्रौदना सक्तचित्ता साकिन्यम्बास्वरूपिणी."
(ललिता सहस्रनाम, 106)

## शाब्दिक अर्थ

मूल चक्र में स्थित देवी पंचमुखी है। इसी देवी का अस्थियों में वास है। वे अपने हाथ में अंकुश धारण करती हैं और एक हाथ अभय मुद्रा में उठा है। वे दालों से तैयार आहार का भोग लगाती हैं और उनका नाम शाकिनी है।

## गुप्त अर्थ

पंचमुखी देवी वास्तव में पंच मुखों वाली नहीं हैं। यह आपके जीवन, आपके शरीर और जीवन-यापन के प्रमुख पक्षों की ओर संकेत करता है। आप अपने पाँच क्रियात्मक अंगों की सहायता से सारे कार्य करते हैं। वे हैं: हाथ, दो पैर, मुख, जननांग व गुदा। हमारे पास पंचेंद्रियाँ हैं: नेत्र, कान, नाक, जीभ व त्वचा। हम पंच तत्वों के मेल से बने हैं, धरती, वायु, अग्नि, जल व आकाश। ये सभी सकल तत्व भौतिक अस्तित्व रखते हैं और इन्हें खुले नेत्रों से देखा जा सकता है।

सकल तत्व, अस्तित्व के सबसे निचले तल का प्रतिनिधित्व करते हैं। यहाँ तक पशुओं में भी यह सब पाया जाता है। तो ऐसा क्या है, जो हमें पशुओं से अलग करता है? ज्ञान तथा विवेक। हमारे पास जैसा ज्ञान और विवेक है, पशुओं के पास उसका अभाव है। हम अपने-आप में सुधार लाते हुए, अपने समाज और संसार को संपन्न बना सकते हैं।

इस चक्र की ऊर्जा यहीं वास नहीं करती। इस श्लोक में अगला शब्द है, 'अस्थि-संस्थिता' , यह आपकी अस्थियों में भी वास करती है। और यहीं असली अर्थ छिपा है। मूलाधार चक्र पर ध्यान लगाने से आपकी हड्डियों की सेहत में सुधार होता है।

इस चक्र में देवी ने, अपने हाथों में एक अंकुश थामा हुआ है। अंकुश प्रायः हाथियों को वश में करने के काम आता है। मैंने एक बार देखा था कि महावत ने चंचल हाथी को बड़ी आसानी से, अपने अंकुश से वश में कर लिया था। उसने अंकुश को उसके विशाल कान पर लगा कर, गर्दन पर खूँटे से ठोंका। हाथी तत्काल नीचे बैठ गया। मूलाधार, ध्यान किए जाने वाले चक्रों में सबसे पहले नंबर पर आता है, तो आपके लिए एकाग्र बने रहने की चुनौती भी हाथी जितनी ही विशाल

होगी; यह कुछ ऐसा ही होगा मानो आप हाथी को पालतू बना रहे हों। आपको कुंठित होने या इससे जूझने की आवश्यकता नहीं है, अन्यथा यह आपको कुचल देगा। बस आपको अपनी सजगता और संकल्प के अंकुश के साथ, आगे बढ़ना है।

सकारात्मकता और दृढ संकल्प के साथ आगे जाने वाले के लिए ब्रह्माण्ड स्वयं मार्ग बनाता है। अगर आप हार नहीं मानते तो सभी बाधाओं को हार माननी पड़ती है। इस प्रकार, देवी का एक हाथ अभय मुद्रा में दिखाई देता है।

देवी को दाल व चावलों से तैयार सूप, मुद्गौदन बहुत भाता है। मुद् यानी काले चने। (लैटिन नाम : Phaseolus vulgaris or Vigna mungo) इसी वर्णन में एक और अर्थ भी छिपा है। जब आप मूलाधार चक्र की साधना करेंगे, तो उन छह माह के दौरान, आपको अपने आहार में ज़्यादा से ज़्यादा दालों व चावल को शामिल करना है। उस समय गरिष्ठ भोजन करने से बचें। इससे शरीर में आलस्य आता है। एक चम्मच मक्खन या घी ले सकते हैं परंतु तले-भुने भोजन से परहेज करें।

मूलाधार चक्र को साधने से, आपकी सेहत में सुधार होता है। यह आपकी हड्डियों के लिए बहुत लाभदायक है। आप ध्वनि, स्पर्श, स्वाद, रूप व गंध जैसे पाँच संवेदी तत्वों के प्रति गहन संवेदनशीलता विकसित कर लेते हैं। मूलाधार चक्र को साधने के लक्षणों की बात करें, तो आपको स्वस्थ रूप से कम भूख लगने लगती है; आहार की कम मात्रा ही आपके लिए पर्याप्त होने लगती है क्योंकि आप भौतिक तत्वों का बेहतर अवशोषण करने लगते हैं।

जब आपकी इंद्रियाँ उन्नत होती हैं, तो आप हर चीज़ का गहन अनुभव पाने लगते हैं और आपके भीतर सभी जीवों के प्रति एक संवेदनशीलता विकसित होती है, जो एक सच्चे आध्यात्मिक व्यक्ति की पहचान है।

मूलाधार चक्र पर लंबे समय तक साधना करने से, आप हल्का महसूस करने लगते हैं। आपके भीतर से तुच्छ वासनाएँ और विचार तिरोहित हो जाते हैं और शांति व कल्याण का भाव उदय होता है।

ग्रंथों में इस चक्र के रंग का वर्णन नहीं आता परंतु मैंने जिस स्त्रोत से इस साधना को पाया, वहाँ ऐसा नहीं है। इस चक्र का रंग चमकीला संतरी है। देवी का नाम शाकिनी है इसलिए, इस चक्र का बीज वर्ण सं है (इसे 'संग' कहा जाता है।) केवल आपके गुरु ही आपको इसका उचित उच्चारण करना सिखा सकते हैं। मुझे अच्छी तरह पता है कि पारंपरिक पाठ्यों में इस चक्र के बीज वर्ण को 'लं' कहा जाता है।

यहाँ मैं इस बात पर बल देना चाहूँगा कि साधनाओं के रहस्य कभी पुस्तकों में नहीं मिलते। अंततः, वर्णों से कहीं अधिक, मानसिक चित्रण की गुणवत्ता ही मायने रखती है।

# स्वाधिष्ठान चक्र

आपके जननांगों के बिंदु पर त्रिक, स्वाधिष्ठान चक्र स्थित है, यही कुंडलिनी का मूल धाम है।

"स्वाधिष्ठानाम्बुजगता चतुर्वक्त्रमनोहरा,
शूलाद्यायुधसम्पन्ना पीतवर्णा' तिगर्विता.
मेदोनिष्ठा मधुप्रीता बन्धिन्यादिसमन्विता,
दध्यन्नासक्तह्रदया काकिनीरूपधाारिणी."

(ललितासहस्रनाम, 104–105)

## शाब्दिक अर्थ

स्वाधिष्ठान चक्र में देवी के चार मुख हैं। उनका रंग पीला और हाथ में एक शूल लिए हुए हैं। वे शरीर की वसा में रहती हैं, उन्हें मधु प्रिय है और वे बांधिन्य आदि अन्य सहायक ऊर्जाओं से घिरी रहती हैं। देवी को दही व अन्न भाता है और उनका नाम काकिनी है।

## गुप्त अर्थ

चींटी से ले कर हाथी तक, जिस जीव में भी चेतना पाई जाती है, उसके भीतर दो चीजें अनिवार्य रूप से होती हैं — जीने की इच्छा और संयोग करने की इच्छा। दरअसल, इन्हें इच्छाएँ कहना भी अनुचित होगा। ये इच्छा नही, बल्कि प्रकृति के, विकास के दो मूल नियम हैं। प्रकृति इसी प्रकार फलती-फूलती है, इसी तरह सभी प्रजातियाँ विकसित होते हुए, प्रगति करती हैं। जीवन के प्रति एक स्वाभाविक मोह, एक आसक्ति होती है, जो जीने की इच्छा से पैदा होती है। हम सदा जीवित रहना चाहते हैं और अपने जीवन तथा कार्यों में प्रसन्नता पाना चाहते हैं।

उसी प्रसन्नता को महसूस करने के लिए, हम लगातार अपने हाथों निर्मित और संग्रहित वस्तुओं से चिपके रहते हैं। हम अपनी संपदा व प्रियजन को खोना नहीं चाहते। हम अपने लिए किसी तरह की पीड़ा नहीं चाहते। जब आपके भीतर छोड़ने का भाव नहीं आता तब तक कोई विकास संभव नहीं हो सकता। जब भी हम कुछ पाना चाहें तो हमें बदले में कुछ खोना भी होता है। हम युवावस्था पाने के लिए अपने बचपन को छोड़ते हैं। हम लक्ष्यों को पाने के लिए समय का बलिदान करते हैं। हम छोड़ने के जितना योग्य होते जाते हैं, पाने के लिए उतने ही अधिकारी होते चले जाते हैं। और यही हमें दूसरी इच्छा की ओर ले जाता है।

संयोग की इच्छा, संभोग करने की इच्छा, सबसे मुक्तिदायी भाव है। एक पुरुष और स्त्री, अपने बाहरी आवरणों को उतार कर, एक-दूसरे के आगे नग्न होते हैं। यहाँ कोई दिखावा या कृत्रिमता नहीं होती। चरमोत्कर्ष के उस एक क्षण में, किसी अहं या आसक्ति के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। यह सब कुछ छोड़ देने से जुड़ा है। हालांकि वे भौतिक तथा भावात्मक रूप से एक हैं, परंतु दोनों साथियों ने, सबसे दिव्य आनंदों में से एक — चरम आनंद के लिए आत्मसमर्पण कर दिया है।

यदि आपके मन में वर्जना और भय है तो आप चरम तक नहीं जा सकते। भले ही आप अपना कितना भी विरोध करें या स्वयं को रोकें, प्रकृति हर सजीव को यौन संबंध बनाने के लिए विवश करती है। हम अपने अहं या संस्कारशुदा धारणाओं के आधार पर इसे अच्छा या बुरा मान सकते हैं, पवित्र या पवित्रवस्तु दूषक मान सकते हैं, परंतु प्रकृति जानती है कि छोड़ने के मूल भाव में ही आप महान स्वतंत्रता का अनुभव कर पाते हैं, तब आप पनपते हैं व प्रकृति को भी पनपने में मदद करते हैं।

'स्व' अर्थात स्वयं और 'अधिष्ठान' का अर्थ है स्थान। स्वाधिष्ठान चक्र कुंडलिनी के सामान्य और प्राकृतिक धाम की ओर संकेत करता है। यह चक्र जननांगों के बिंदु पर स्थित है। हम यहीं से अपनी काम ऊर्जा को प्रकट करते हैं, प्रजनन करते हैं और संभोग का आनंद पाते हैं।

हालांकि, कुंडलिनी सबसे निचले चक्र पर आ गई है क्योंकि इसने हमारे मस्तिष्क में स्थित शतदल कमल से अमृतपान किया है। कोई आनंद और यहाँ तक कि काम संबंधों से उत्पन्न आनंद भी, मस्तिष्क के अभाव में अनुभव नहीं किया जा सकता। यही हर प्रकार के अनुभव को सूचित, निर्देशित व नियंत्रित करता है। इसलिए, किसी भी प्रकार के काम संबंधी आनंद को पाने के लिए हमारे मस्तिष्क और त्रिक ऊर्जा का सामंजस्य में होना बहुत महत्व रखता है। उदाहरण के लिए, जिस व्यक्ति का मस्तिष्क मृत हो गया हो, उसे आप उत्तेजित नहीं कर सकते।

प्रत्येक व्यक्ति में काम संबंधी आनंद पाने की आवश्यकता इतनी गहरी है कि यही हमारा रचनात्मक पक्ष होने के साथ-साथ, हमारे पतन का कारण भी बन जाता है। इसके कारण हम अपने साथी के प्रति मोह रखने लगते हैं। हम एक प्रकार का वैशिष्टय चाहते हैं; हम उन पर अपना स्वामित्व चाहते हैं, उन्हें अपने अनुसार गढ़ना चाहते हैं। विशिष्टता की उसी चाह में, जलन, नफ़रत और ईष्या जैसे भाव मुखरित होते हैं। हम अपने पर ही नियंत्रण खो देते हैं। हमारे भीतर की अच्छाई के सूरज को मेघ ढांप लेते हैं।

शास्त्रीय ग्रंथों के अनुसार, कुंडलिनी सहस्रार चक्र से अमृत पीने के कारण ही, अपना नियंत्रण खो देती है और मूलाधार की ओर चली जाती है, अपने स्थान से खिसक जाती है। मूलाधार का अर्थ है, मूल बुनियाद, परम आधार। यह हमारे उस संसार की वास्तविकता को प्रकट करता है, जहाँ अधिकतर लोगों के लिए यौन संबंध केवल वासना से जुड़े हैं। इस रचनात्मक शक्ति में छिपी क्षमता को भुला कर, हमारे वर्तमान समाज ने इस संयोग को मात्र एक कृत्य बना कर छोड़ दिया है, जहाँ अधिक से अधिक लोग अपने संबंधों से बाहर जा कर, काम संबंध बनाने के लिए आतुर हो उठे हैं। अब हम इस रचनात्मक ऊर्जा को, भौतिक, भावात्मक व आध्यात्मिक स्तरों पर होने वाले अनुभव को निखारने से नहीं जोड़ते। हममें से अधिकतर लोग, इसके भौतिक पक्ष से ही प्रसन्न हैं; उन्हें केवल आने और जाने में ही विशेष आनंद आता है, शायद आप मेरा अर्थ समझ सकते हैं।

हालांकि उन्हें भी दोषी नहीं ठहराया जा सकता, क्योंकि उन्हें अभी तक संपूर्ण संयोग का सुख ही नही मिला, देह, मन व आत्मा का मेल, सब कुछ एक साथ, एक ही स्तर पर! यह किसी पाठशाला में नहीं सिखाया जाता। सेक्स एक निजी मामला है, परंतु ऐक्य नहीं। यह एक ब्रह्माण्डीय आयाम है।

यहीं कुंडलिनी और स्वाधिष्ठान चक्र की भूमिका सामने आती है। ललिता सहस्रनाम में

लिखा है कि चार मुख वाली देवी इस चक्र की अधिष्ठात्री है। वास्तव में, यह देवी यौनिकता व मनुष्य के मन के चार पक्षों का प्रतिनिधित्व करती है।

## यौनिकता के चार पक्ष

सेक्स केवल एक भौतिक कर्म नहीं है। दरअसल, काम संबंधी आनंद का अधिकांश सेरीब्रल या मस्तिष्क से जुडी अनुभूति कहा जा सकता है — यह मस्तिष्क में घटता है। सेक्स भले ही मन में हो, शब्दों में हो या भौतिक रूप से — सभी इसे एक ही तरीके से नहीं करते। आप किस तरीके से संभोगरत होंगे या आपको उससे किस प्रकार की संतुष्टि मिलेगी, यह इस बात पर निर्भर करता है कि आप आध्यात्मिक सीढ़ी के किस पायदान पर हैं।

नित्य तंत्र, कुब्जिका तंत्र, कुलार्णव तंत्र, महानिर्वाण तंत्र आदि तांत्रिक ग्रंथों में सभी मनुष्यों को उनके स्वभाव के अनुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। वे हैं: दिव्य, वीर व पशु। हालांकि, जब लैंगिकता की बात आती है, तो एक और भाव भी सामने आता है, मनुष्य भाव। कोई भी काम संबंधी कृत्य; दिव्य, वीर, पशु या मनुष्य भाव में ही पूर्ण होता है।

## पशु भाव

संस्कृत के शब्द 'पाश' यानी श्रृंखला से पशु शब्द बना है। जो व्यक्ति किसी आदत, विचार या इच्छा की श्रृंखला से बंधा हो, वह पशु है। किसी पशु के लिए सेक्स कोई भावात्मक माँग नहीं होती, वह एक जैविक आवश्यकता मात्र है। जो व्यक्ति पशु भाव में शारीरिक संबंधों का आनंद लेता है, वह हिंसक और कठोर तरीके से व्यवहार करेगा।

पशु भाव अपनी साथी की भावनाओं की परवाह नहीं करता। वह केवल अपनी वासना की पूर्ति करना जानता है। पशु भाव में स्थित स्त्री या पुरुष, किसी के भी साथ शारीरिक संबंध बना सकते हैं। उन्हें किसी से प्रेम करने या किसी से प्रेम पाने की इच्छा नहीं होती। जैसे एक कुत्ता किसी से भी प्रसन्नतापूर्वक रोटी का टुकड़ा ले लेगा, उसी प्रकार एक कामुक पशु भी माँस के टुकड़े की तलाश में है।

वे साथी के साथ अपने-आपको इस तरह नष्ट कर देंगे, जैसे किसी वेश्यालय में हों। कामवासना की पूर्ति ही इन संबंधों का एकमात्र ध्येय होता है। पशु अपनी कामवासना को शांत करने के लिए साथी खोजते हैं; वे किसी भी तालाब से जल पी सकते हैं। ऐसी ही प्रवृतियों वाला मनुष्य भी पशु के समान है। वह अपने लिए केवल चरमोत्कर्ष चाहता है, भले ही साथी कोई भी हो। और ऐसा करने में, उसे अपने साथी को चोट पहुँचाने से भी हर्ज़ नहीं होता — फिर चाहे वह चोट शारीरिक हो या भावात्मक!

## मनुष्य भाव

मनुष्य से अभिप्राय ऐसे व्यक्ति से है, जो मन में आश्रय लेता हो। पशु से एक चरण ऊपर मनुष्य भाव है। पशु भी भाव रखते हैं परंतु हम उनसे कहीं अधिक उन्नत व जटिल भाव रखते हैं। मनुष्य

भाव में, आपको किसी दूसरे के साथ शारीरिक संबंध बनाने से पूर्व, ऐसा लगता है कि आपके मन में उसके लिए प्रेम हो और बदले में वह भी आपको उसी प्रकार प्रेम दे सके।

आप कितना संतुष्ट अनुभव करेंगे, यह इस बात पर निर्भर करेगा कि आपके भीतर प्रेम, बंधन, मोह व जुड़ाव आदि से जुड़े कैसे विचार और भावनाएँ हैं। आप दूसरे व्यक्ति को अपनी वासना की पूर्ति का माध्यम नहीं मानते। आप उन्हें प्रेम करना चाहते हैं, उनके साथ रहना चाहते हैं। आप उनके और अपने जीवन में एक परिवर्तन लाना चाहते हैं। आप उनका ध्यान पाना चाहते हैं। आप चाहते हैं कि आपको आपका प्यास वापिस मिले। इस तरह आपको अपनेपन और मोह का एहसास होता है। आप चाहते हैं कि आप उनके लिए सब कुछ हों और बदले में वे भी आपके लिए सब कुछ हो जाएँ।

हमारे भीतर पाश्विक भाव व प्रवृत्तियाँ इतने गहरे हैं कि हममें से अधिकतर लोग मनुष्य भाव में भी प्रेम नहीं कर पाते। हममें से अधिकतर मनुष्य और पशु भाव के बीच झूलते रहते हैं। कभी-कभी, जब पाश्विक वृत्ति हावी होती है, तो व्यक्ति संभोग के दौरान कठोर व्यवहार कर सकता है। जिस प्रकार पशु समागम के समय अपने साथी से पेश आता है, अधिकतर पुरुष, अपने साथ लेटी स्त्री के प्रति एक औंस भर प्रेम को महसूस किए बिना भी, उससे अपनी वासना की पूर्ति कर सकते हैं।

भले ही हम कितने भी लोगों के साथ शारीरिक संबंध क्यों न बना लें, परंतु हम पशु नहीं हैं। हम मनुष्य हैं और इसलिए हम केवल शारीरिक संभोग के माध्यम से संतुष्टि व पूर्णता का अनुभव नहीं पा सकते। कहीं न कहीं, हमारी आध्यात्मिक व भावात्मक प्यास, हमारी कामेच्छा से कहीं अधिक बड़ी है। इस प्रकार, जब हम अपनी पाश्विक वृत्ति से ऊपर उठते हैं, तो हम मनुष्य भाव में यौन संबंध बनाना चाहते हैं।

मन की ऐसी अवस्था में, मनुष्य भाव में, काम संबंध बनाने से हमारी आध्यात्मिक और भावात्मक प्यास भी संतुष्ट होती है। यह हमारे भीतर बसी उस गहरी इच्छा की भी पूर्ति करती है जो अपने लिए साथ और सौख्य की चाह रखती है।

## योद्धा वीर भाव

वीर भाव, योद्धा का भाव है। रुद्रयामल में, वीर को तांत्रिक सिद्ध कहा गया है, जो दिव्य भाव, दिव्यता से केवल एक चरण नीचे है। ऋगवेद में, संतति को वीर कहा गया है। ऐसा व्यक्ति जो शत्रुओं का दमन कर सकता हो, वह वीर है परंतु सबसे अधिक, जो अपने रचनात्मक द्रव्य (वीर्य) को निखारता है, वही वीर है।

रचनात्मक द्रव्य को, स्त्री और पुरुष में, प्रजनन द्रव्य के रूप में माना जा सकता है, वह द्रव्य जो स्त्री व पुरुष को संतानोत्पत्ति के योग्य बनाता है। वीर भाव में, दोनों में से एक साथी सदैव निष्क्रिय होता है। इस भाव से होने वाला यौन संबंध दुगना उद्देश्य पूरा करता है। पहला, सक्रिय साथी को अपनी विजय का भाव होता है। एक योद्धा की तरह, वे अपने पर जितना अधिक नियंत्रण करते हैं, यह उनके लिए उतना ही संतुष्टिदायक होता है। दूसरे, ये अपने साथी पर जीत हासिल कर प्रसन्नता अनुभव करते हैं क्योंकि इस प्रकार उन्हें अपनी भौतिक शक्ति व

सहनशीलता के प्रदर्शन का अवसर मिलता है।

मनुष्य भाव से विपरीता, योद्धा भाव में अनासक्ति का भाव रहता है। उसके लिए, यौन संबंध जीवन का एक अंग है। उनकी साधना का एक अंश मात्र है। जिस प्रकार एक योद्धा अपने राजा की रक्षा करना चाहता है, उसी प्रकार वीर भाव, अपने साथी की रक्षा करना चाहता है। सुरक्षा के इस भाव को स्वामित्व भाव समझने की भूल नहीं करनी चाहिए। एक योद्धा मोह की दृष्टि से नहीं बल्कि कर्तव्य की दृष्टि से बचाव करता है।

किसी पशु का समागम, कुछेक क्षण मात्र से अधिक नहीं होता। एक मनुष्य का यह शारीरिक संबंध कुछ मिनटों का हो सकता है, परंतु वीर भाव में यह संतुष्टि, संभोग की अवधि को दीर्घकाल तक ले जाने से ही मिलती है। पशु भाव की तरह, वीर भाव में केवल वासना की पूर्ति नहीं हो रही, मनुष्य भाव की तरह इसमें अपनेपन की कोई गहरी चाह नहीं छिपी। वीर भाव का अर्थ है कि आप अपने साथी के साथ, उनके सहयोग व शक्ति बन कर उपस्थित हैं। आप ऐसे व्यक्ति के रूप में उनके साथ हैं, जिनसे वे सुरक्षा पाने की इच्छा रख सकते हैं।

यौन चेतना में, दिव्य भाव ही अंतिम चरण है। पशु कामवासना शांत करना चाहते हैं, मनुष्य स्वामित्व चाहते हैं, योद्धा सुरक्षा प्रदान करना चाहता है, परंतु दिव्यता सबको मुक्त कर देती है।

## दैवीय भाव

कृष्ण, आधी रात को श्यामल जल वाली यमनुा नदी के किनारे जा बैठते। चंद्रमा की सौम्य किरणें उनकी मुखाकृति, वृक्षों, नदियों आदि पर पड़ती और सब कुछ प्रेम की तरह धीमे-धीमे प्रकाशित हो उठता। प्रेम एक कोमल भाव है, एक सौम्य प्रकटीकरण। वे अपनी बाँसुरी बजाने लगते। उनके विशुद्ध अधरों से निकली दिव्य फूँक से, खोखली वंशी से माधुरी फूट पड़ती। जीवन का संगीत जीवंत हो उठता और प्रेम इसकी धुन पर नाच उठता, सारी गोपियाँ मंत्रमुग्ध हो जातीं।

वे अपना घर-बार, पति, संतान, पशु आदि सारी संपत्ति का त्याग कर, कृष्ण के पास दौड़ी चली आतीं। वे अपने हाथ के काम को वहीं छोड़, बाँसुरी की धुन सुन कर, खिंची चली आतीं। वे अपना सब कुछ कृष्ण को सौंप देना चाहती थीं। गोपियाँ उन्हें चंदन का लेप करतीं, कुछ उन्हें ताजे पुष्पों की माला धारण करवातीं और पान खिलातीं। कुछ गोपियाँ उनकी टाँगें दबाने लगतीं तो कुछ स्नेह से उनके बाल सँवारतीं। वे बाँसुरी को सराहतीं जिसे कृष्ण सदैव अपने संग रखते थे। वे उसे अपने अधरों का स्पर्श देते थे। वे पूछतीं कि वंशी ने ऐसे कौन से अच्छे कर्म किए थे कि उसे कृष्ण की वंशी बनने का सौभाग्य मिला।

वंशी उन्हें उत्तर देती, 'मैंने स्वयं को रिक्त कर दिया। मैं अपने भीतर कुछ नहीं रखती। मैं किसी चीज़ से मोह नहीं रखती। मैंने पूरी तरह से आत्मसमर्पण कर दिया और अब मैं उनकी इच्छा की चेरी हूँ, उनके कहने से ही बजती हूँ। मैं कभी नहीं बोलती, कृष्ण ही मेरे माध्यम से बोलते हैं।"

गोपियों ने भी वंशी की तरह, कृष्ण के आगे आत्मसमर्पण कर दिया था। उनके बीच कोई जलन या ईर्ष्या का भाव नहीं था। उनके बीच कोई मोह या आसक्ति नहीं थी क्योंकि वे जानती थीं कि उन्हें कृष्ण की सेवा करनी है, उन पर स्वामित्व नहीं पाना। वह पशु भाव (वासना पूर्ति),

मनुष्य भाव (स्वामित्व), या फिर वीर भाव (रक्षक), नहीं बल्कि दिव्य भाव (मुक्ति) था।

दिव्य भाव, यह यौन चेतना के विकास में सबसे परम अवस्था है। यौन कर्म में दिव्य भाव से लिप्त होने वाला व्यक्ति केवल एक विस्तार है, प्रेम का एक प्रकटीकरण। कृष्ण और गोपियों के संबंध में यही भाव दृष्टिगोचर होता है।

जब आप कुंडलिनी जागरण के पथ पर आगे बढ़ते हैं, तो आपको अपनी यौन ऊर्जा को निर्देशित करना आ जाता है, आप एक दाता हो जाते हैं। आपकी कोई माँग नहीं होती और आपको दूसरे को अपना प्रेम और स्नेह देने में ही आनंद आता है। आप दिव्य भाव से अपनी देह, आत्मा व मन सौंप देते हैं। तब शारीरिक संबंध, वासना की पूर्ति का साधन नहीं, सभी स्तरों पर प्रेम में एकात्म होने का माध्यम बन जाते हैं।

केवल तीन प्रकार के लोग ही यौन कर्म में दिव्य भाव को अनुभव कर पाते हैं। पहले निःस्वार्थी लोग जो बिना किसी स्वार्थ के, पूरी करुणा व देख-रेख के साथ दाता की भूमिका निभाते हैं। वे लोग संभोग के दौरान केवल अपने साथी को संपूर्ण बनाने के बारे में विचार करते हैं। उन्हें अपने साथी को स्नेह और सुरक्षा प्रदान करने में ही सुख व आनंद मिलता है। जिस प्रकार कृष्ण का प्रेम, शुद्ध व किसी भी प्रकार के मोह से परे है।

दूसरे वे लोग होते हैं जिन्होंने प्रेम में पूरी तरह से आत्मसमर्पण कर दिया हो। ऐसे व्यक्ति के कोई निजी चुनाव या वरीयता नहीं होती। वह दूसरे व्यक्ति को अपने हृदय में स्थान देता है। यह व्यक्ति संभोग में इसलिए लिप्त होता है क्योंकि वह अपना कण-कण दूसरे व्यक्ति को सौंप देना चाहता है। जिस तरह गोपियाँ सेवा करते हुए, दूसरे व्यक्ति की ताकत बनना चाहती हैं। जब गोपियाँ कृष्ण को अपने दिव्य प्रेमी के रूप में स्वीकार लेती हैं, तो वे बिना किसी शर्त के समर्पण कर देती हैं। यही आत्मसमर्पण ही, भक्ति का मूल रूप है।

दिव्य भाव में प्रेम करने वाले तीसरे प्रकार के लोग, ऐसे व्यक्ति होते हैं जो तांत्रिक सिद्ध होते हैं। वे पूरी तरह से अनासक्त होते हैं और उनके भीतर काम संबंध को लंबे समय तक बनाए रखने की कोई इच्छा नहीं होती, एक योगी अपनी सहयोगिनी को दिव्य ऊर्जा से परिपूरित कर देना चाहता है ताकि वह कामालिंगन से मुक्त होने के बाद भी, एकात्मकता के गहन भाव को अनुभव कर सके। यह एक प्रकार का आध्यात्मिक खुमार कहा जा सकता है। शिव इसी दिव्य भाव में शक्ति से संभोग करते हैं।

दिव्य भाव में, पुरुष और स्त्री के बीच की सीमाएँ अलोप होने से पूर्व, पूरी तरह से धुंधला जाती हैं। ऐसा नही लगता कि आप किसी दूसरे के साथ संबंध बना रहे हैं। लगता है मानो आप अपना ही विस्तार कर रहे हों, दर्पण बन गए हों। एक पुरुष, स्त्री में अपने स्त्रैण पक्ष को खोजता है और स्त्री, पुरुष में अपने पुरुष तत्व को खोजती है। दाँया मस्तिष्क, बाएँ मस्तिष्क के संपर्क में आ रहा है, रचनात्मकता तर्क के साथ लीन हो रही है। मानो मन अपने-आप को ही देख रहा है।

स्वाधिष्ठान चक्र की चार मुखी देवी, मन के चार पक्षों का प्रतीक भी है। जब हमारे मन में कोई विचार आता है, तो उस पर सही मायनों में कारवाई करने से पूर्व, बहुत कुछ उभरता है। कोई भी कर्म कितनी भी अधीरता से क्यों न किया जाए, इसके चार पक्ष होते हैं। ये चार पक्ष ही हमारे मन के चार पक्ष हैं।

# मन के चार पक्ष

मनुष्य के मन के चार पक्ष, सामूहिक रूप से चतुष—अंतःकरण, विचारों व भावों के चार स्थान कहलाते हैं। वे हैं, मनस, बुद्धि, चित्त व अहंकार।

कोई भी इच्छा या सोच पहले मन में ही उपजते हैं। अगर हम उनका कुछ नहीं करते तो वह विचार वहीं मिट जाता है। एक विचार का जीवनकाल इतना ही होता है। यदि हम इसका त्याग नहीं करते तो यह हमारी चेतना में आ जाता है। हम इसके हर पहलू, लाभ और हानि पर विचार करने लगते हैं। हालांकि चेतना स्वयं निर्णय नहीं ले पाती। जब हम मन ही मन सोच लेते हैं तो इस सोच को मन के तीसरे पक्ष, बुद्धि के हवाले कर देते हैं।

बुद्धि ही निर्णय लेती है कि हम इसे आगे ले जाने वाले हैं या नहीं। यदि हम इसे साकार रूप देना चाहते हैं तो हम इसे अहंकार को सौंप देते हैं, यह हमारे व्यक्तिगत अस्तित्व का भाव है। हमारा अहं हमें हमारी निजता को बनाने और रक्षा करने को कहता है। यह हमें दिव्य संयोग का अनुभव पाने से रोकता है क्योंकि अहं सदा असुरक्षित अनुभव करता है। यह हमें, हमारे आसपास के परिवेश से तोड़ देता हे। यह हमें अपने वश में करना चाहता है, इसे समर्पण से भय लगता है। जब हमें किसी के कामों से ठेस लगती है, तो यह अहं ही हमें दुख देता है। काम संबंध अपने-आप में सबसे अधिक संतुष्टिदायक भावों में से है क्योंकि इसके लिए आपको अपने अहं का पूरी तरह से त्याग करना पड़ता है।

आपकी यौनिकता, यौन आचरण तथा यौन संबंधी विचार आदि स्वाधिष्ठान चक्र को साध कर नियंत्रित किए जा सकते हैं, ये आपके मन व चेतना पर प्रत्यक्ष और तत्काल प्रभाव डालते हैं।

देवी के हाथ में एक शूल है जो साधक को चक्र पर एकाग्र होने की प्रेरणा देता है। बंधिनी व अन्य सहायक देवियाँ, बंध का सूचक हैं, जिनका योग में अभ्यास किया जाता है ताकि चक्र साधना में लाभ मिल सके। वैसे बंध करने की आवश्यकता नहीं, मैं निजी रूप से उन्हें नहीं करता। मैंने सदा स्वयं को विशुद्ध ध्यान पर केंद्रित रखा है।

यह देवी शरीर की वसा में वास करती है और इन्हें शहद व दहीयुक्त भोजन पसंद है। इसका अर्थ है कि इस चक्र पर ध्यान लगाते हुए, आपको अपने आहार में दही व शहद को शामिल करना चाहिए। इस चक्र पर ध्यान करने से, सभी रोगों पर सकारात्मक प्रभाव होगा, वसा से जुड़े रोगों का शमन होगा और धमनियों में कॉलेस्ट्रॉल और वसा के जमाव पर भी रोक लगेगी।

इस चक्र की देवी का नाम काकिनी है। और इनका बीज वर्ण कं है।

# मणिपुर चक्र

आपकी नाभि केंद्र पर ही मणिपुर चक्र स्थित है।

"मणिपूराब्जनिलया वदनत्रयसंयुता,
वज्रादिकायुधोपेता डामर्यादिभिरा वृता.
रक्तवर्णा मांसानिष्ठा गुडान्नप्रीतमानसा,
समस्तभक्तसुखदा लाकिन्यम्बास्वरूपिणी."

(ललिता सहस्रनाम, 102–103)

## शाब्दिक अर्थ

तीन मुखी देवी मणिपुर चक्र में स्थित हैं। उनके एक हाथ में वज्र है और वे डामरी तथा अन्य सहायक ऊर्जाओं से घिरी हैं। वे रक्तवर्णा हैं और आपकी मज्जा में रहती हैं। उन्हें गुड़ (गन्ने के रस को उबाल कर बनता है) बहुत पसंद है। वे अपने भक्तों को हर प्रकार के सुख पाने का आशीर्वाद देती हैं और देवी लाकिनी का रूप रखती हैं।

## गुप्त अर्थ

मणिपुर चक्र आपकी नाभि के बिंदु पर स्थित है, यह आपका नाभि केंद्र है। तीन मुख वाली देवी आपके तीन दोषों; वात, कफ और पित्त की सूचक हैं। प्रत्येक व्यक्ति की प्रवृत्ति इन्हीं तीन दोषों पर आधारित होती है। किसी में वात की मात्रा अधिक होती है तो किसी में कफ की और किसी में पित्त की अधिक मात्रा पाई जाती है। आयुर्वेद के अनुसार, मनुष्य के शरीर में उत्पन्न 95 प्रतिशत रोगों का संबंध पेट से होता है। मणिपुर चक्र पर ध्यान लगाने से, तीनों दोष शांत होते हैं।

तीन मुख वाली देवी, आपके द्वारा अवशोषित तीन प्रकार के आहार की भी सूचक हैं। ग्रंथों ने भोजन को तीन श्रेणियों में विभाजित किया है, सात्विक (पौष्टिक शाकाहारी आहार), राजसिक (आवेगों को बढ़ाने वाला आहार), व तामसिक आहार (आक्रामकता को बढ़ाता है)। नाभि चक्र पर ध्यान लगाते हुए, आहार का नियमन बहुत महत्व रखता है।

आपकी सेहत के अहम पहलुओं में से एक, शरीर के ताप को मणिपुर चक्र निर्देशित करता है। ग्रंथों के अनुसार, ताप पहले भोजन को पेट में जलाता है, यदि यह नियमित नहीं होगा तो यह पाचन तंत्र को प्रभावित करेगा और व्यक्ति पेट के अल्सर, लीवर के रोगों व कब्ज आदि का शिकार हो जाएगा। अगर आप अपने शरीर को पर्याप्त भोजन नहीं देते और आपका शरीर अतिरिक्त ताप से त्रस्त है, तो आपका मुँह सूखा रहेगा, होंठ फट जाएँगे और आप उच्च रक्तचाप से ग्रस्त भी हो सकते हैं।

देवी के हाथ में वज्र है, जिस तरह भूख के झटके महसूस होते हैं, आप इस चक्र में ऐसी सनसनाहट महसूस करते हैं मानो बिजली कड़की हो। प्रारंभ में, वे आते-जाते रहेंगे। बाद में, वे थोड़े समय तक बने रहेंगे और आप इस चक्र पर निरंतर होने वाली सनसनाहट को अनुभव कर

सकेंगे।

सहायक देवियाँ उन सात शुभ गुणों की सूचक हैं जो आप अपने भीतर विकसित करते हैं। वे सात देवी हैं — डामरी, मंगला, पिंगला, धन्या, भद्रिका, उल्का व सिद्ध; ये सम्मोहक ध्वनि, सौभाग्य, सुंदर चमकदार त्वचा, अच्छे भोजन, सद्व्यवहार, प्रकाश तथा सफलता की सूचक हैं।

यह भी एक रोचक तथ्य है, मणिपुर चक्र का मन की सहज व अंतर्ज्ञान संबंधी विशेषताओं से गहन संबंध है। मैंने असंख्य अवसरों पर देखा है कि मणिपुर चक्र पर ध्यान करने से आपकी अंतर्दृष्टि में निखार आता है। संभवतः इस तथ्य का संबंध गर्भ से जोड़ा जा सकता है, जब आप अपनी नाभि से गर्भनाल से जुड़े थे। यही आपके अस्तित्व का मूल है; गर्भ में रहने के दौरान आपका कोई भी शिक्षण या पोषण आदि इसी नाभि के माध्यम से होता था। इस प्रकार आपके सहज ज्ञान का, आपके मणिपुर चक्र से ठोस संपर्क है।

मणिपुर चक्र को आज्ञा चक्र के समकक्ष ही महत्वपूर्ण माना जा सकता है। यह कुंडलिनी जागरण के लिए महत्वपूर्ण चक्रों में से है। जब आप मणिपुर सिद्धि पा लेते हैं, तो आप अपने शरीर के ताप को नियमित कर सकते हैं, अच्छी सेहत कायम कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त आपकी त्वचा में भी निखार और चमक आती है। एक अच्छा साधक, इस चक्र को साधने के बाद मानो एक हल्की सी चमक से दमक उठता है। मणिपुर चक्र को साधने से मांसपेशीय स्वास्थ्य में भी सुधार होता है।

इस चक्र को साधने वाला एक गंभीर साधक लंबे समय तक भी भूख और प्यास को सहन कर सकता है। वह बहुत कम भोजन के साथ, लंबे समय तक अपनी ऊर्जा बनाए रख सकता है।

पेट भी आपके भय का स्थान है। जब आप भयभीत होते हैं तो सबसे पहले इसे अपने पेट में महसूस करते हैं। हमारे भय, हमें अपनी पूरी संभावना तक जाने से रोक सकते हैं। इस चक्र को साधने से आपको, जीवन की अनिश्चित परिस्थितियों में शांत रहने का भाव मिलता है। आपके भीतर एक प्रकार की भयहीनता का अनुभव होता है। जो लोग संघर्षों व अवांछित परिस्थितियों में व्याकुल और घबराया हुआ महसूस करते हैं, उन्हें मणिपुर चक्र पर ध्यान लगाने से लाभ हो सकता है।

देवी का वास माँस में है। इसका अर्थ है कि यह चक्र आपकी मांसपेशियों की लोच बनाए रखता है और इनसे जुड़ा कोई भी रोग, चक्र साधने से दूर हो सकता है। मणिपुर पर गहन साधना के दौरान, आपको अधिक से अधिक सात्विक भोजन ग्रहण करना चाहिए।

इस चक्र का रंग है। देवी का नाम लाकिनी है और इनका बीज वर्ण ‘लं’ है।

# अनाहत चक्र

आपके सीने के बीच, हृदय से दाईं ओर, कुछ इंच की दूरी पर, आपका अनाहत चक्र है।

"अनाहताब्जनिलया श्यामाभा वदनद्वया,
दंष्ट्रोज्ज्वला' क्षमालादिधरा रुधिरसंस्थिता.
कालरात्र्यादिशक्त्यौघवृता स्निग्धौदनप्रिया,
महावीरेन्द्रवरदा राकिण्यम्बास्वरुपिणी."

(ललिता सहस्रनाम, 100–101)

## शाब्दिक अर्थ

अनाहत चक्र में स्थित देवी दो मुखी व श्यामवर्णा हैं। उनके दंत उज्ज्वल हैं और उन्होंने रुद्राक्ष की माला धारण की है। वे रक्त में उपस्थित रहती हैं। वे कालरात्रि देवी से घिरी रहती हैं और उन्हें तैल में पके कोमल और नरम खाद्य पदार्थ भाते हैं। वे साहसी साधकों को अपना आशीर्वाद देती हैं और राकिनी का रूप धारण करती हैं।

## गुप्त अर्थ

हमारे पास जीवन में हर चीज़ के लिए दो धारणाएँ होती हैं। यह गहन रूप से, हर चीज़ के दो पक्षों का प्रतिनिधित्व करती हैं — अच्छा-बुरा, उचित-अनुचित, सत्य-असत्य, सकारात्मक भाव-नकारात्मक भाव और चुनावों की बात करें, तो हाँ — नहीं! ग्रंथों ने इसे द्वैत कहा है और यही सभी मनुष्यों के भावों का बीज है। आप द्वैत से उठते हैं और स्वचालित रूप से इन अस्थायी अवस्थाओं से परे चले जाते हैं, आप अनंत शांति के छोर पर आ जाते हैं।

हममें से अधिकतर अपनी भावनाओं से संचालित होते हैं। भले ही हम कितने भी शांत या सहज क्यों न हों, हमें गुस्सा आते देर नहीं लगती। उसी गुस्से में हम ऐसे शब्दों का प्रयोग करते हैं जैसे कोई सर्प विष वमन करता है। इससे मन में छिपे भावों को बाहर आने का अवसर मिलता है। पहले हमें प्रसन्नता होती है फिर हम शर्मिंदगी महसूस करते हैं। और फिर हम उन बातों को याद करते हैं, जो हम नहीं कहना चाहते थे। अब हमारे पर पछतावे और बेचारगी का भाव छा जाता है। इससे हमारी आत्म-छवि को ठेस लगती है। घृणा, बैर, जलन, उदासी व द्वेष के भाव भी ऐसे ही हैं। जब हमारे कर्म, वाणी और वचन के अनुसार नहीं होते, तो हमारे भाव नियंत्रण से बाहर हो जाते हैं। आप अपने हृदय को शुद्ध करते हैं और विचार स्वयं को शुद्ध करते हैं; कर्म अपने-आप ही उनके अनुरूप हो जाते हैं।

दोमुखी देवी हृदय चक्र में वास करती हैं। वे द्वैत का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस संसार में रहते हुए, हमें विवश होकर प्रतिदिन, दिन में कई बार चुनाव करने पड़ते हैं। अतीत, वर्तमान के चुनावों को प्रभावित करता है और वर्तमान चुनाव भविष्य की दिशा तय करते हैं। जिसका दिल और दिमाग आपस में तालमेल रखता हो, उसके लिए सहज भाव से निर्णय लेना सरल होता है।

ऐसा व्यक्ति आसानी से निर्णय ले कर आगे बढ़ सकता है। इस तरह एक प्रकार का निर्भीक भाव आता है।

हृदय चक्र पर ध्यान लगाने से आपके दिल और दिमाग के बीच खूबसूरत संतुलन पैदा होता है। इस तरह आपको सारे सकारात्मक और नकारात्मक भावों के बीच सहज रहना आ जाता है बल्कि आपके लिए निर्णय लेना भी आसान हो जाता है। आपकी प्रतिभा सामने आती है और आप पूरे संकल्प के साथ अपने चुनावों पर टिक पाते हैं। आपको अपनी योजनाएँ स्पष्ट तौर पर दिखने लगती हैं।

लोग अक्सर दो कारणों से निर्णय नहीं ले पाते — वे भविष्य से डरते हैं या उन्हें यह पता नहीं चलता कि उनके निर्णय का क्या प्रभाव होगा। एक अच्छा, साधक, मणिपुर चक्र को साधने के बाद, उद्वेग से परे जा कर, अपनी भावनाओं को परख़ सकता है। और इस चक्र को साधने के बाद, आप निर्णय लेने और उन पर कारवाई करने की योग्यता पा लेते हैं।

इस चक्र में देवी के उज्ज्वल दंत इस बात के सूचक हैं कि आप अपने निर्णयों को बेहतरी के साथ संभालने के योग्य हो जाते हैं। आप वांछित — अवांछित, दोनों को ही एक समान उदासीनता के साथ स्वीकारते हैं। इसका एक अर्थ यह भी है कि आप जीवन के सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं के बीच उज्ज्वल दंतपंक्ति की तरह हो जाते हैं। अब आप किसी भी बात पर नाराज़ नहीं होते।

अक्षमाला , अक्षों के मोती से अभिप्राय, रूद्राक्ष से नहीं, बल्कि संस्कृत वर्णमाला के पचास वर्णों से है जो अ से आरंभ हो कर क्ष पर समाप्त होते हैं। आपकी प्रशंसा, निंदा, आलोचना या सराहना में जो भी शब्द कभी कहा जाएगा, वह इन्हीं के मेल से बना होगा। अगर आप यह सोच कर तटस्थ रह सकें कि दूसरे आपके लिए जो भी राय रखते हैं, वे केवल वर्णों से शब्द जोड़ कर आपको एक माला दे रहे हैं तो आपकी प्रतिक्रिया गायब हो जाएगी। इस तरह आपके भीतर एक सजगता और शरीर में ऊर्जाओं की स्थिरता उत्पन्न होगी। जब आपकी ऊर्जा स्थिर होती है, तो दूसरे आपको भड़का नहीं सकते, आपको विचार करने का समय मिल जाता है और आप बाहरी व आंतरिक रूप से, अपने लिए शाब्दिक व मानसिक प्रत्युत्तर का चुनाव कर सकते हैं।

देवी का वास रक्त में है। इसका अर्थ है कि इस चक्र पर ध्यान लगाने से आप रक्त की अशुद्धियों को दूर कर सकते हैं।

देवी कालरात्रि व ऊर्जाओं के अन्य चार रूपों से घिरी हैं। उनके नाम हैं — रक्तदंतिका, भ्रामरी, शाकंभरी व दुर्गा। यहाँ कालरात्रि से अभिप्राय नौ रातों की विशेष अवधि से है। यह समय वर्ष में एक बार आता है और चंद्र कैलेंडर के अनुसार, माघ माह में, घटते चंद्रमा के छठे दिन से ले कर, अमावस्या से एक रात पहले तक होता है। ग्रगोरियन कैलेंडर के अनुसार, माघ का माह जनवरी में आता है। इन नौ रातों के दौरान, दिन में और रात में चार-चार घंटों तक, इस चक्र की साधना करने से उल्लेखनीय परिणाम सामने आते हैं। इन नौ दिनों के दौरान ग्लूटन-मुक्त आहार ग्रहण करना चाहिए।

जब आप इस चक्र पर ध्यान करेंगे तो सबसे पहले आपका ध्यान जिस बात पर जाएगा, वह समत्व भाव है। आप अपने भावों को कहीं बेहतर तरीके से संभालना सीख लेंगे। जब आप इस चक्र की सिद्धि करेंगे तो प्रकृति के अनेक बल, आपके सपने साकार करने की दिशा में सहायक

हो उठेंगे। सहज भाव से निर्णय लेने की क्षमता, एक नए ही स्तर तक आ जाएगी।

अनाहत चक्र पर ध्यान करने का एक और लाभ यह होगा कि आप एक निश्चित प्रकार की शुद्धि का अनुभव कर सकेंगे — जो भी भावात्मक और भौतिक होगा। आपके रक्त की गुणवत्ता में सुधार होगा और आप कहीं सकारात्मक अनुभव कर सकेंगे। आपकी अस्वीकृति से भरपूर प्रतिक्रियाएँ पहले से कहीं सजग व धीमी होंगी।

साधक को अपने भीतर एक नए प्रकार के साहस का अनुभव होगा। देवी का नाम राकिनी है। उनका रंग श्याम तथा सहायक ध्वनि 'रं' है।

पारंपरिक ग्रंथों में, हृदय चक्र के रंग को हरा माना जाता है। अज्ञात कारणों से, किसी ने जबरन, इंद्रधनुष के सात रंगों को सात चक्रों से जोड़ दिया है। वास्तव में इनका ऐसा कोई संपर्क नहीं है। ललिता सहस्रनाम के अनुसार हृदय चक्र का रंग काला है।

# विशुद्धि चक्र

आपके कंठ के बीच में विशुद्धि चक्र स्थित है।

"विशुद्धिचक्रनिलया" रक्तवर्णा त्रिलोचना,
खट्वाङ्गादिप्रहरणा वदनैकसमन्विता.
पायसान्नप्रिया त्वक्स्था पशुलोकभयङ्करी,
अमृतादिमहाशक्तिसंवृता डाकिनीश्वरी."

(ललिता सहस्रनाम, 98–99)

## शाब्दिक अर्थ

विशुद्धि चक्र में तीन नेत्रों वाली एकमुखी देवी का वास है। उनका वर्ण रक्तचंदन है। वे अपने हाथ में एक रहस्यमयी दंड रखती हैं और उन्हें चावल, चीनी व दूध में पका भोजन भाता है। वे त्वचा में वास करती हैं और पशु जगत में आतंक उत्पन्न करती हैं। अमृता व अन्य देवियों से घिरी देवी का नाम डाकिनी है।

## गुप्त अर्थ

यह सबसे महत्वपूर्ण चक्रों में से एक है। यह चक्र सारे निचले चक्रों को दो विशुद्ध चक्रों से अलग करता है जो आपको उल्लेखनीय अंतर्दृष्टि व असाधारण विवेक प्रदान करेंगे। विशुद्धि का अर्थ है, पूरी तरह से शुद्ध और पवित्र। जब भी हम कुछ खाते हैं तो यह कंठ से नीचे उतरते ही कसैला हो जाता है; भोजन का स्वाद बदल जाता है। कंठ एक अस्थायी पात्र है। यह अपने भीतर कुछ नहीं रखता। यह किसी भी वस्तु को ले जाने का मार्ग भर है।

यहाँ देवी एकमुखी हैं क्योंकि अब आप बाहर और भीतर से एक से हो गए हैं। यही इस चक्र पर ध्यान करने का नतीजा है। अपने इतना आंतरिक बल और साहस पा लिया है कि अब आपको दोहरा बर्ताव नहीं करना पड़ता और आप जो भी हैं, जहाँ भी हैं और जैसे भी हैं; उससे पूरी तरह से संतुष्ट हैं।

इस चक्र की व्याख्या में, केवल देवी के नेत्रों का संदर्भ आता है। वे त्रिलोचना कहलाती हैं यानी तीन नेत्रों वाली! प्रायः यह नाम आदि योगी शिव के लिए प्रयुक्त होता है। जब आप विशुद्धि चक्र को साध लेते हैं, तो आपके और सहस्रार में बसी कुंडलिनी के बीच परम संयोग का केवल एक चरण रह जाता है। आप इस चक्र को खोलने तक, लगभग शिव और उनके जैसे योगी हो जाते हैं।

एक पौराणिक प्रसंग के अनुसार, शिव ने विष को अपने कंठ में धारण किया इसलिए वे नीलकंठ कहलाए। नीलकंठ यानी नीला है कंठ जिनका। कुछ लोग इस नीले रंग को विशुद्धि चक्र से भी जोड़ते हैं। हालांकि आंतरिक मंडलों में ऐसा कुछ नहीं सिखाया जाता, पुस्तकों में यहाँ-वहाँ से सामग्री ली जाती है। एक प्रतिशत से भी कम साधक, विशुद्धि चक्र तक आने की लगन

और परिश्रम दर्शा पाते हैं।

यह देवी अपने हाथ में एक रहस्यमयी दंड, खड्वांग लिए हुए है जो शिव के पास होता है। यह इस बात का सीधा सा संकेत है कि आप इस चक्र पर ध्यान लगाने से विचार, ऊर्जा व विवेक के स्तर पर प्रमुख रूपांतरण का अनुभव करेंगे। इस देवी के पास अपने आयुध नहीं, उनके हाथों में शिव के आयुध हैं। यहाँ ऊर्जा का गहन रूपांतरण हो रहा है — संभाव्य ऊर्जा गतिक ऊर्जा में बदल रही है। इसके बाद के चक्रों में, देवी के पास कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं हैं। आत्म-रूपांतरण का संघर्ष, प्रेम रूपी बगिया में बदल जाएगा ओर चमचम चमकते चंद्रमा के प्रकाश में जगमगा उठेगा। जहाँ शिव और शक्ति, पुरुष और प्रकृति, दिव्य रूप में प्रकट होंगे। प्रयास, प्रयासहीनता में बदल जाएगा; सभी कार्य असाधारण हो जाएँगे।

देवी को दूध, चावल और चीनी से बनी खीर भाती है। इस चक्र पर गहन साधना के दौरान, आपको अपने आहार में केवल दुग्ध पदार्थों पर ही केंद्रित रहना चाहिए। इसके अलावा आप चावल और मनपसंद फल भी ले सकते हैं। इस दौरान नमक, मसाले, अनाज व दालें आदि न लें।

इस चक्र पर गहन साधना के दौरान आपकी त्वचा चमक उठेगी और त्वचा के सभी रोग मिट जाएँगे। शारंगधर संहिता नामक आयुर्वेद पाठ्य में लिखा है कि त्वचा की सात परतें होती हैं। चक्र पर साधना के दौरान उचित आहार लेने से त्वचा की सातों परतें निरोगी हो जाती हैं।

देवी पशुलोक को त्रास देती हैं। इस तरह आप भी निर्भीक हो उठते हैं और अपने आसपास के सभी पशुओं को अपना मित्र बना सकते हैं।

मैं वनों में रहता था, मैं असंख्य वन्य पशुओं के बीच लगभग असुरक्षित था, बचाव का कोई साधन नहीं था। मुझ पर कभी किसी पशु ने हमला नहीं किया, कभी किसी कीट तक ने नहीं काटा। जब आप इस चक्र को साध लेते हैं तो मृत्यु का भय आपसे दूर हो जाता है।

यह देवी, अमृता तथा ऊर्जा के अन्य रूपों से घिरी हैं। वे चक्र साधना की सोलह देवियाँ हैं — श्री विद्या , देवियों के विशुद्ध विज्ञान में इसका वर्णन आता है। वे हैं —कामकर्षिणी, बुद्धिकर्षिणी, अहंकारकर्षिणी, शब्दकर्षिणी, स्पर्शकर्षिणी, रूपकर्षिणी, रसकर्षिणी, गंधकर्षिणी, चित्तकर्षिणी, धैर्यकर्षिणी, स्मृतिकर्षिणी, नामकर्षिणी, बीजकर्षिणी, आत्मकर्षिणी, अमृतकर्षिणी व शरीकर्षिणी।

इन सभी नामों के अंत में 'कर्षिणी' प्रत्यय आता है जिसका अर्थ है, किसी चीज़ को रोकने की शक्ति। इससे भी महत्वपूर्ण अर्थ है, उचित उपयोग या व्यवहार की शक्ति। ये सोलह नाम प्रेम, बुद्धिमता, आत्म-संकल्पना, ध्वनि, स्पर्श, आकार, स्वाद, गंध, चेतना, वीरता, स्मृति, पहचान, रचनात्मक द्रव्य, सूक्ष्म व भौतिक शरीर क्रमशः हैं। सभी चक्रों पर साधना करते हुए जब तक आप यहाँ आएँगे, तो आप सदैव सजग और एकाग्रचित्त रहना सीख चुके होंगे, आप अपने आचरण में पूरी सतर्कता रखेंगे और आप इन सभी सोलह तत्वों को उपयुक्त रूप से अपने जीवन में प्रयुक्त करेंगे।

देवी का नाम डाकिनी है और उनकी सहायक ध्वनि 'दं' है।

# आज्ञा चक्र

आपकी भौहों के मध्य, माथे के बीच, आज्ञा चक्र है।

"आज्ञाचक्राब्जनिलया शुक्लवर्णा षडानना.
मज्जासंस्था हंसवतीमुख्य शक्तिसमन्विता,
हरिद्रान्नैकरसिका हाकिनीरूपधारिणी."

(ललिता सहस्रनाम, 107.5–108)

## शाब्दिक अर्थ

आपकी दोनों भौहों के मध्य, आज्ञा चक्र में स्थित देवी विशुद्ध गौरवर्णा और छह मुखों वाली हैं। अस्थि मज्जा में स्थित देवी को प्रधान ऊर्जा हंसावती का सहयोग मिलता है। उन्हें हल्दी डाल कर पका हुआ, गरिष्ठ भोजन भाता है, वे हाकिनी का रूप धारण करती हैं।

## गुप्त अर्थ

अब देवी के हाथ में कोई अस्त्र-शस्त्र नहीं, जिसका अर्थ है कि अब लड़ने के लिए कुछ शेष नहीं रहा। बस साधक को चुनौतियों की अंतिम कड़ी से उबरना है, जो अब बिना किसी प्रयास के शीघ्र ही संपन्न होगा। श्वेत शांति का रंग है और देवी छह मुख वाली हैं। अब शिष्य शांत भाव में रहता है और छह मुख उन गहन परिवर्तनों के सूचक हैं, जिनसे प्रत्येक जीव को गुज़रना पड़ता है; वे छह अशक्तताओं तथा छह आंतरिक शत्रुओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। मैं इनके विषय में जानकारी दूँ, उससे पहले यह बहुत महत्व रखता है कि अगर आपने निचले पाँच चक्रों पर पूरी गंभीरता से ध्यान किया है, अगर आप पूरे भक्ति-भाव से चरण-दर-चरण, यहाँ तक आए हैं तो परिवर्तन के ये छह पक्ष, शत्रु या अशक्तता आपका कुछ नहीं बिगाड़ सकते, ये आपको लुभा नहीं सकते, आपका ध्यान नहीं भटका सकते और न ही आपके मार्ग की बाधा बन सकते हैं। ये केवल आपके भीतर विलीन हो जाएँगे। तब आप उनसे विशाल हो जाएँगे।

वे छह परिवर्तन हैं : जन्म, अस्तित्व, वृद्धि, रूपांतरण, क्षय व अलोप होना। वे छह अशक्तता या रोग हैं : भूख, प्यास, दुख, भ्रम, बुढ़ापा व मृत्यु। वे छह शत्रु हैं: काम, क्रोध, लोभ, मोह, दंभ व ईर्ष्या। यहाँ तक कि एक योगी के लिए भी ये भारी चुनौतियाँ हो सकती हैं। इनके कारण भय पैदा हो सकता है। इनके कारण साधक, आज्ञा चक्र पर ध्यान रमाने के दौरान भी बुरा व्यवहार कर सकता है, जबकि इस ध्यान से आपके भीतर विवेक व अटलता का बीज अंकुरित होना चाहिए।

आप हर चीज़ को एक दृष्टिकोण से देखना सीख लेते हैं। इसका अर्थ यह नहीं कि अब आपको भोजन या वस्त्रों की आवश्यकता नहीं रही। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि आपके भीतर असाधारण धैर्य व सहनशीलता विकसित हो जाती है। आरंभ में, आप इस संसार की अस्थायी प्रकृति के लिए निरंतर सजगता बनाए रखते हैं। आपको एहसास होने लगता है कि

केवल अपनी इच्छाओं की पूर्ति करने के अतिरिक्त आपको एक विशेष भूमिका निभाने के लिए चुना गया है। ये भावनाएँ आपके मन को शुद्ध करती हैं। परमानंद की लहरें सारे नकारात्मक भावों को तिरोहित कर देती हैं।

स्वार्थी इच्छाओं के स्थान पर आप निःस्वार्थ सेवा को अपना लेते हैं। यही नई शुद्धि आपको थोड़े में ही कहीं अधिक संतुष्ट होना सिखाती है।

आपकी इच्छाएँ घटने लगती हैं, नतीजन आपकी माँगें भी कम होने लगती हैं। अब आपको लोगों का ध्यान, धन, यश व यहाँ तक कि प्रेम पाने की भी इच्छा नहीं रहती। किसी के मोह में पड़ना या किसी का समय चाहने की इच्छा भी अलोप होने लगती है। इस अवस्था में, आप तेज़ी से अपने भीतर के शाश्वत परमानंद की ओर बढ़ते हैं। आपकी भीतर तक जाने की यात्रा का समापन निकट आ जाता है। आज्ञा चक्र साधने का अर्थ है कि आपने अंत का आंरभ कर दिया।

जैसा कि मैंने बार-बार कहा, इस काम के लिए कोई छोटा रास्ता नहीं है। अगर आप पूरे धैर्य, केंद्र व समर्पण के साथ यहाँ तक आ सकते हैं तो आप सही मायनों में एक अनूठे रत्न हैं, करोड़ों में एक हैं। बस आपको यह जानना है कि अगर आप यहाँ तक आ गए, तो प्रकृति आपके लिए योजना तैयार करेगी। यह आपको एक उच्चतम उद्देश्य की पूर्ति के लिए साधन के तौर पर प्रयुक्त करेगी।

इस चक्र की देवी अस्थि मज्जा में स्थित है। इस चक्र पर ध्यान करने से आप अस्थि मज्जा से जुड़े रोगों से मुक्त हो सकते हैं। यह इस बात की भी सूचक है कि अब ध्यान आपकी अस्थियों में है। पहले आपको ध्यान लगाना पड़ता था, अब यह स्वचालित रूप से लगेगा। आप बस लगभग पहुँच गए हैं, आप शांति व परमानंद की प्राकृतिक अवस्था की तलाश करने के लिए प्रस्तुत हैं।

सहायक देवी हंसावती कहलाती हैं। यह उन गहन अभ्यासों का सूचक है, जो आप दैवीय निराकार रूप पर कर सकते हैं। जब आप भीतर श्वास लेते हैं तो आप कहते हैं 'हम्सा' और बाहर श्वास छोड़ते हुए कहते हैं, 'सोहम्',। इसका अर्थ है, 'मैं वही हूँ'। अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में इस ज्ञान से बड़ा बोध कोई नहीं हो सकता कि आप जिस दैवीय को खोज रहे हैं, आप वही हैं और आपके आसपास की हर वस्तु और व्यक्ति भी उतना ही दैवीय है।

जब आप अपनी साधना में इतनी दूर आ जाते हैं, तो आपको लाभों की चिंता नहीं रहती क्योंकि आप हर चीज़ को लाभ व हानि के पैमाने पर नहीं तौलते। आप बहुत पहले ही ऐसे द्वैत से परे हो चुके हैं।

इस चक्र पर ध्यान लगाते हुए स्वादिष्ट किंतु सेहतमंद भोजन करें और अपने भोजन में हल्दी को शामिल करना बेहतर होगा। देवी का नाम हाकिनी व उनका बीज वर्ण 'हं' है।

# सहस्त्रार चक्र

आपके सिर के शीर्ष पर, हज़ार पंखुड़ियों वाला सबसे सुंदर कमल, सहस्रार खिला है।

"सहस्रदलपद्मस्था सर्ववर्णोपशोभिता,
सर्वायुधधरा शुक्लसंस्थिता सर्वतोमुखी.
सर्वोदनप्रीतचित्ता याकिन्यम्बास्वरूपिणी."

(ललिता सहस्रनाम, 109–110.5)

## शाब्दिक अर्थ

शतदल कमल में स्थित, संस्कृत वर्णमाला के सभी वर्णों से सुसज्जित, सारी सामग्री सहित, रचनात्मक द्रव्य में स्थित, बहुदिशामुखी तथा हर प्रकार का आहार पसंद करने वाली, देवी याकिनी हैं।

## गुप्त अर्थ

सहस्र शब्द का अर्थ कई गुना है, शाब्दिक अर्थ है, एक हज़ार। ललिता सहस्रनाम में, देवी के एक हज़ार मुख, हज़ार नेत्र व हज़ार हाथ बताए गए हैं (सहस्रशिरा सहस्राक्षी सहस्रपात)। सहस्रार देवी बनने के लिए आपका प्रवेश बिंदु है। जब आप सहस्रार तक आते हैं, तो आपका अस्तित्व और योग्यताएँ कई गुना हो उठती हैं।

सहस्रार सही मायनों में कोई चक्र नहीं; यह एक अवस्था, एक दशा और एक परिणाम है। यह आपके लिए असीम संभावनाओं का स्त्रोत है। अब आप कोई एक व्यक्ति नहीं रहे, जो आजीवन संघर्ष कर रहा है या लक्ष्य पाने के प्रयास में है। इसकी बजाए आप देवी अर्थात दिव्यता का प्रतिरूप हो जाते हैं। आपके हर विचार की गति, केंद्र व शक्ति हज़ारों की संख्या में बढ़ जाती है। मानो आपको सहायता के लिए हज़ारों हाथ दे दिए गए हों।

सहस्रार तक पहुँचना, आपके द्वारा की गई गहन साधना का पुरस्कार है। इस अवस्था तक आने वाला साधक सिद्ध हो जाता है। साधक सिद्ध होने की अवस्था से भी परे हो गया है। वह साध्य, बनने के परम स्तर तक पहुँच गया है, जिसे वह खोज रहा था। साधक ने उसके साथ एकात्म पा लिया, जिसे वह साधना चाहता था।

इस स्तर पर आप पूजनीय हो उठते हैं क्योंकि आपका अस्तित्व पूरी तरह से निःस्वार्थ है और दूसरों के कल्याण के लिए है। आप लोगों को आरोग्य देने, चमत्कार करने और उनके पार देखने की शक्ति अर्जित कर लेते हैं। आप स्वाभाविक रूप से असीम करुणा के स्वामी हो जाते हैं और आप लोगों को उसी तरह अपनी ओर आकर्षित करते हैं, जैसे पुष्प मधुमक्खियों को अपनी ओर खींचते हैं।

इस श्लोक में प्रयुक्त हज़ार शब्द को 'एक हज़ार' के अर्थ में नहीं लिया गया। प्रायः प्राचीन ग्रंथों में 'बहुत सारे' को 'शत' लिख दिया जाता था जिसका शाब्दिक अर्थ होता है, 'एक हज़ार'

और 'बहुत सारे से भी अधिक' सहस्रार। हज़ार पंखुड़ी वाले कमल से अभिप्राय है कि आप कमलों और उनकी पंखुड़ियों से भी परे चले गए हैं, अब वे प्रचुर संख्या में उपलब्ध हैं। इस अवस्था में, आप ऐसे कमलों के लिए महासमुद्र के समान हैं।

वर्णमाला के सभी वर्ण इसी चक्र में वास करते हैं। हम जो भी बोलते या लिखते हैं, वह वर्णमाला के वर्णों के मेल से बनता है। यह वर्णों का शाब्दिक मेल मात्र नहीं है। इसका अर्थ है कि आप एक ऐसी अवस्था में आ गए हैं जब आपके लिए चाहने के लिए कुछ बचा ही नहीं। आप हर वस्तु के यथार्थ का गहरा ज्ञान रखते हैं। आप सत्य, समझ और करुणा की परम शक्ति अर्जित कर लेते हैं।

इस अवस्था पर आने वाला व्यक्ति रक्त, अस्थि, माँस व मज्जा आदि के भौतिक तत्वों से परे चले जाता है। अब आप रचनात्मकता के द्रव्य में रहते हैं, आप रचनात्मक द्रव्य हैं। आप रचनात्मक द्रव्य से वीर्य का अर्थ न लें। इसे आयुर्वेद में ओज्स कहा गया है, यह पक्ष स्त्रियों व पुरुषों, दोनों के लिए होता है। एक, दो, तीन या चार नहीं बल्कि आप सभी दिशाओं में देख सकते हैं। आप अपने ही जगत के सम्राट या सम्राज्ञी बन गए हैं। इस स्तर पर आने के बाद आप अपनी नियति स्वयं लिखते हैं।

आपके संकल्प, आपके विचार — वे आपके लिए प्रकट होते हैं। आपकी इच्छा को प्रकृति अपने लिए आदेश मान कर पूरा करती है। आप जिस भी चीज़ को गंभीरता से लक्ष्य करते हैं, वह साकार हो उठती है। आप जो भी चखते हैं, वह अद्भुत जान पड़ता है, आप नियमों से परे हो गए हैं; आप मनचाहे रूप में कुछ भी खाने, करने या होने के लिए मुक्त हैं, क्योंकि आपने अपने ही मन के चंगुल से मुक्ति पा ली है। परमानंद की गहन भौतिक संवेदनाओं ने आपको अपने वश में ले लिया है।

जब मैंने दिव्य माता का दर्शन पाया, उसके बाद मैं अपने मस्तिष्क में गहन संवेदनाओं, शक्तिशाली संवेदनाओं को अनुभव करने लगा। मानो अंदर ही अंदर कोई मेरे माथे को मथ रहा था और फिर यह संवेदना पूरे मस्तिष्क में फैल रही थी। संवेदना मुख के तालू से आरंभ होती। किसी तरह की पीड़ा नहीं थी परंतु एक तरह का असाधारण दबाव महसूस होता था।

आरंभ में, जब मैं आराम करने के लिए अपना सिर नीचे करता, तो संवेदना गहराने से सिर में दर्द होने लगता। दिमाग में कोई तकलीफ़ नहीं, बस एक गहरा बल महसूस हो रहा था, मानो किसी ने दिमाग पर जोर डाल रखा हो। लगातार बनी रहने वाली एकाग्र दशा के कारण, वह संवेदना भी निरंतर रहने लगी। मुझे कुछ समय लगा और उसके बाद ही मैं उसका अभ्यस्त हो सका। प्रारंभ में, ऐसा लगता था कि वह सब शांत हो जाएगा पर वह सदा मेरे साथ रही। वे संवेदनाएँ आज भी उतनी ही शक्तिशाली हैं, जितनी पहले दिन अनुभव हुई थीं।

जिस प्रकार गंगोत्री से बूँद-बूँद टपकती गंगा, एक विस्तृत और पूर्ण रूप से बहती वेगवान नदी बन कर, गंगासागर में विलय होती है, सहस्रार से टपकता अमृत भी बूँद दर बूँद मेरे पूरे अस्तित्व को भिगोता हुआ, परमानंद से सराबोर करता रहता है।

इन देवी को याकिनी कहा जाता है। इनका वर्ण 'यं' है। मूल वर्ण 'य' का अर्थ है, 'यह'। यही है, अब!

यही एक सिद्ध व जिज्ञासु के बीच मूल अंतर है; एक साधक जहाँ संघर्ष करता है, सिद्ध वहाँ

आनंदित होता है। सिद्ध पुरुष वहीं रहते हैं, जहाँ से छात्र भाग खड़े होते हैं और वह यही है, अब!

# शब्द

वेदों में अद्वैत का पथ कहता है कि ईश्वर निराकार है, और 'मैं वही हूँ।' आत्मा व परमात्मा के बीच कोई भेद नहीं है। इस प्रकार दोनों समान हैं और सभी ईश्वर हैं। वहीं दूसरी ओर, भक्ति कहती है कि आप केवल एक आत्मा नहीं, जीवात्मा हैं, जो दूषित हो गई है। भक्ति कहती है कि आप स्वार्थपूर्ण इच्छाओं व भावों से भरे हैं। यह कहती है कि आपने अनेक पाप कर्म किए हैं जबकि ईश्वर पापरहित है। इस प्रकार, सदा से ही शुद्ध रहने वाली सर्वश्रेष्ठ आत्मा तथा अनंत काल से दूषित जीवात्मा के बीच विलय संभव नहीं है।

भक्ति कहती है कि अपने पापों की क्षमा चाहते हुए, उस दिव्य का नाम जप करते हुए, उसका स्तुति गान करते हुए, स्वयं को समर्पित कर दो।

तंत्र इसे अस्वीकार करता है।

ईश्वर के बारे में अवधारणा ही तंत्र और वेद का मूलभूत अंतर है। तंत्र में आप कहते हैं, 'आप मेरे पूजन का साधन हो। आप मुझसे महान हो इसलिए मैं आपका पूजन करता हूँ परंतु मैं केवल स्तुतिगान करने या अपने पापों के लिए क्षमा चाहने में ही विश्वास नहीं रखता। मैं स्वयं को उस सीमा तक शुद्ध करना चाहता हूँ, जहाँ आप मुझमें और मैं आपके भीतर समा जाऊँ। मैं मृत्यु के बाद संयोग में रुचि नहीं रखता, मैं अपनी जीवितावस्था में ही इसका अनुभव पाना चाहता हूँ।

"यैर्एव पतनं द्रव्यैः सिद्' धिस्तैरव च्ओदिता,
स्त्रीकौलदर्शन्ए चैव भैरव्एण महात्मना."

(कुलार्णव तंत्र, 5, 48)

कौल परंपरा के महान भैरव, शिव ने निर्देश दिया है कि जो वस्तु मनुष्य के पतन का कारण बनती है, उसके उपयोग से ही आध्यात्मिक उन्नति करना संभव है।

कुंडलिनी मेरी ऊर्जा है और मेरे भाव व विचार भी मेरे हैं। तंत्र कहता है कि कुछ भी अपने-आप में अच्छा या बुरा नहीं होता। यह सब उसके उपयोग पर निर्भर करता है। कुंडलिनी पथ की साधना में स्वीकारा जाता है कि मेरे भीतर कमियाँ और दोष हैं परंतु मैं उनके कारण अपनी क्षमता को नष्ट नहीं कर सकता। तंत्र इस बात पर बल देता है कि किसी भी चीज़ से ऊपर उठने के लिए आपको उसे समझना होगा।

जब आप किसी चीज़ को नहीं समझते, तो आप उसका दमन करते हैं, आप उसे अस्वीकारते हैं और जागरण के पथ पर यही अस्वीकार आपकी सबसे बड़ी बाधा बन जाता है। इसकी बजाए अपनी सारी नकारात्मकता और सीमाओं को एक सशक्त बल में बदलें जो मुक्ति पाने पर केंद्रित हों।

तंत्र आपको सिखाता है कि आप सहज भाव से हर चीज़ का त्याग कर दें ताकि आप उसे देख सकें, समझ सकें, उसे साध सकें और उससे पार जा सकें। आपको यह सोचने में बुरा लग सकता है कि आप पापों से भरे हैं। इसकी बजाए, अपने पापों की सोच से परे जाते हुए, उसके मूल तक जाएँ। किसी न किसी को तो कचरा हटाना ही होगा। उपेक्षा करने से बात नहीं बनेगी।

उसमें से निरंतर दुर्गंध आती रहेगी। आपको पूरे कौशल और कलात्मकता के साथ अपने भीतर की हर चीज़ को साधना सीखना होगा।

एक जंगल में केवल सिंह और हिरण ही नहीं रह सकते। इसमें लकड़बग्घे व हाथी भी होंगे। इसमें पक्षियों व कीड़ों-मकोड़ों के घर भी होंगे। आप एक व्यक्ति के भीतर सारे सद्भाव नहीं पा सकते। मेरे पास इन भावों का मिश्रण है परंतु मैं इसी मिश्रण से अपने अस्तित्व के कैनवस को रंगना चाहता हूँ। यदि कुंडलिनी मूल बल, शुद्ध सत्व व देवी है तो व्यक्ति को चाहिए कि वह अपनी ही ऊर्जाओं के माध्यम से स्वयं को उघाड़ दे ताकि अपनी सच्ची संभावना को साकार कर सके। यदि ईश्वर हर वस्तु में विद्यमान है, तो क्या उसके अस्तित्व की कोई भी वस्तु असंपूर्ण हो सकती है? यही तंत्र का पथ है।

कुंडलिनी जागरण एक तांत्रिक साधना है।

एक इल्ली पंखों के साथ नहीं जन्मती परंतु अपने खोल में होने वाले संघर्ष के दौरान, अपने खोल से बाहर आने के प्रयास के दौरान, यह लगातार ध्यान करती है, उड़ने का सपना देखती है। एक गंदे और बदसूरत लार्वा से, प्यूपा में बदलती है जो किसी भी पेड़ की शाखा से उल्टा लटका रहता है। यह वहाँ कुछ सप्ताह से कई माह तक वहाँ लटका रह सकता है।

इल्ली उड़ नहीं सकती। इसके पास पंख नहीं पर इसके पास आशा है, विश्वास है। मानो लार्वा ने समझ लिया है कि अगर इसे उड़ना है तो इसे अपने-आपको अपने वर्तमान स्वरूप से परे करना होगा, इसे बदलना होगा। इसे हल्का होना होगा। इसे अपने रूपांतरण के लिए हामी भरनी होगी।

प्यूपा बडे ही धैर्य से तितली बनने की साधना करता है। यह चुपचाप, निरंतर अपनी परतें उतारता रहता है। धीरे-धीरे, इसे अपने भीतर एक परिवर्तन दिखने लगता है। नई परतें पहले से कड़ी हैं, अब यह स्वयं को किसी कीट जैसा अनुभव नहीं करता, इसकी पीठ पर कुछ छोटे अंश उग रहे हैं जो शायद इसके पंख होंगे। यह रूपांतरण के पथ पर पूरे विश्वास के साथ आगे बढ़ता रहता है। और एक दिन, खोल इतना खुल जाता है कि प्यूपा उसमें से बाहर आ जाता है। यह स्वयं को उस खोल से बाहर गिरा देता है। और कुछ अविश्वसनीय घटता है। धरती पर गिरने की बजाए, पंख खुल जाते हैं और यह उड़ान भर लेता है।

अब यह रेशम के तंतु खाने वाली इल्ली या उल्टा लटकने वाला प्यूपा नहीं रहा। यह पंखों व रंगों के साथ एक सुंदर तितली बन गई है। इसके जीवन ने नए आयाम ले लिए हैं। एक गहरे अंधेरे खोल से बाहर आ कर, यह हरे-भरे मैदानों में खिले पुष्पों के साथ, दिन के उजले प्रकाश में खेलती है। इसने नई योग्यताओं को सीखा हालांकि इसके पास कोई सहायक अंग नहीं थे। एक तितली नाक न होने के बावजूद सूंघ सकती है। एक इल्ली से ले कर तितली बनने तक का असाधारण रूपांतरण ही कुंडलिनी जागरण है, यही सारी तांत्रिक साधना का रहस्य है।

इसे पूरा होने में कितना समय लगेगा, यह आपके नैतिक, मानसिक व भौतिक अनुशासन की गुणवत्ता पर निर्भर करता है। कोई लार्वा पेड़ पर कितने समय तक लटका रहेगा, यह उसके प्रकार पर निर्भर करता है। कईयों को खोल से बाहर आने में कुछ दिन लगते हैं तो कुछ कई माह तक भीतर कैद हो कर रह जाते हैं। आप अपनी परतों को उतारने के लिए जितना संकल्पबद्ध होंगे और आपके प्रयास जितना अधिक अनुशासित होंगे, आपका रूपांतरण उतना ही तीव्र हो

जाएगा।

ललिता सहस्रनाम में, चक्रों की व्याख्या के बाद कहा गया है :

> "स्वाहा स्वधा' मतिर् मेधा श्रुतिः स्मृतिर् अनुत्तमा.
> पुण्यकीर्तिः पुण्यलभ्या पुण्यश्रवणकीर्तना,
> पुलोमजार्चिता बन्धमोचनी बर्बरालका."
>
> (ललिता सहस्रनाम, 110.5–111)

ये श्लोक यहाँ किसी संयोगवश नहीं, इन्हें पूरी सावधानी के साथ लिया गया है। शाब्दिक अर्थ में इन पंक्तियों में केवल देवी के नाम लिए गए हैं। इनका अर्थ है कि देवी देवों व पूर्वजों को चढ़ाया गया भोग ग्रहण करती हैं। वे ही आदि विचार, बुद्धिमतापूर्ण, सुनने योग्य व स्मृति में धारण करने योग्य हैं। देवी का स्तुति गान करने वाले उनसे गुण, यश व लाभ पाते हैं। देवी सबसे महान पुलोमा, महान ऋषि भृगु की पत्नी द्वारा भी पूजनीय हैं, वे सारे बंधनों को काट देती हैं और वे सम्मोहिनी हैं।

वास्तविकता में, इसके गुप्त अर्थ में साधक की आध्यात्मिक प्रगति का रहस्य छिपा है। पहले शब्द स्वाहा का अभिप्राय है कि आपने अपनी सारी नकारात्मक प्रवृत्तियों को जला कर राख कर दिया है। इल्ली की तरह, आप इस अविश्वास को जला देते हैं कि आप उड़ नहीं सकते। अब आप उन बातों पर केंद्रित नहीं रहते, जो आप नहीं कर सकते, आप उन बातों पर ध्यान रखते हैं, जिन्हें आप करना चाहते हैं और ब्रह्माण्ड स्वयं आपकी सहायता के लिए आगे आ जाता है।

अगले शब्द स्वधा का अर्थ है, आंतरिक शक्ति तथा अवशोषित करने की आंतरिक योग्यता। कुंडलिनी जागरण से, आपको अपनी असाधारण प्रतिभा का भान होता है, वह असीम संभावना, जिसे पाने के लिए आप सदा से व्याकुल थे। आप किसी इल्ली की तरह अपने भय तथा वर्जनाओं की परतें उतारने लगते हैं। आपकी हर परत उतरने के साथ ही, आपके भीतर से आपका एक नया पक्ष उजागर होता है। आपको लगता है कि आप भी पंख उगा सकते हैं, आप अपने खोल से बाहर आ सकते हैं।

इसके बाद मर्ति मेधा श्रुति स्मृतिः रनतुम्मा का अर्थ है कि जागरण के पथ पर, आपके विचार का बल तथा बुद्धिमता गति पकड़ लेते हैं और आप अस्तित्व के उन रहस्यों को भी खोलने के योग्य हो जाते हैं, जो अब तक मानवजाति के लिए अछूते और अनजाने थे। आपका विचलित मन एक केंद्रित किरण की तरह हो जाता है। आपकी स्मरण शक्ति तीव्र हो जाती है और आप सूचना व जानकारी का विशाल भंडान रखने के योग्य हो जाते हैं। आपको एहसास हो जाता है कि भले ही रेशम के क्यों न हों, आपको लाखों तंतुओं में नहीं बंधना, आपको सारे पुष्पों का अमृतपान करना है।

इस छंद के अन्य शब्दों का अर्थ है कि आप ब्रह्माण्ड में एक अनूठे रत्न बन जाते हैं। आपकी उपस्थिति और सोच मात्र से ही, आसपास के लोगों को आनंद और मुक्ति का अनुभव होता है।

प्रकृति आपको महत्वपूर्ण कार्य करने के लिए चुनती है और आपके सद्गुण और विवेक की चर्चा दूर-दूर तक प्रसारित हो जाती है। आपके मुख से निकला प्रत्येक शब्द किसी न किसी रूप में मानव जाति को लाभ देता है। सभी ज्ञानी जन आपकी शरण में आ कर आपके माध्यम से मुक्ति, शांति व आनंद का अनुभव पाएँगे।

इसी तरह हमारे प्राचीन ऋषि-मुनियों वेद व्यास, अगस्त्य आदि ने अकल्पनीय आध्यात्मिक ऊँचाईयाँ हासिल कीं। यही कारण है कि बौद्ध जैसे धर्म में भी, जो आत्मा और परमात्मा के अस्तित्व को नकारता है, उसमें कुंडलिनी और चक्रों के बारे में विस्तृत विवरण मिलता है। बौद्ध ग्रंथों के अनुसर, यहाँ तक कि गौतम बुद्ध ने भी कुंडलिनी जागरण के माध्यम से ही प्रबोध पाया था। बुद्ध ने भले ही इसे स्वयं कुंडलिनी का नाम न दिया हो किंतु उनके विशुद्ध जागरण और उसके बाद मिलने वाले चक्र परिचय का संकेत, इसी आदि ऊर्जा की ओर ही है।

जिस तरह एक इल्ली खोल की कैद से बाहर आ कर, तितली बन कर उड़ती है। कुंडलिनी जागने पर, आप भी अपने मानसिक संस्कारों से मुक्त होंगे। आपके भीतर से आपका एक नया रूप प्रकट होगा। हर चक्र के भेदन के साथ क्रोध, ईष्या, द्वेष, अहं, लोभ आदि की परतें उतरती जाएँगीं और आप स्वयं जीते-जागते, देवी का प्रतिरूप हो जाएँगे। यह रूपांतरण आपके भीतर, ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के साथ एकात्मकता का अवर्णनीय अनुभव ले कर आएगी, यह निर्भीकता की अद्भुत भावना है।

यदि आपको लगता है कि यह इतना अच्छा है कि सत्य हो ही नहीं सकता तो मैं इसके लिए आपको दोषी नहीं ठहराता। एक समय था, जब कुंडलिनी की सत्यता को ले कर मेरे मन में भी संदेह था। यह सब सुनने में बहुत अवास्तविक सा लगता था। क्या इस युग और समय में भी ऐसे परमानंद का अनुभव पाना संभव था? क्या कुंडलिनी वास्तव में हमें दिव्य ऊर्जा के साथ एकाकार कर सकती है? क्या इसके जागरण में मनुष्य वास्तव में निर्भीक हो जाता है? मेरी गहन साधना के दौरान या उसके बाद भी, मैं न तो वायु में उड़ा, या न ही मेरे शरीर का आकार घट कर अणु जितना हुआ। परंतु गहरी एकाग्रता के साथ लंबे समय तक ध्यान करने से, मेरे पूरे शरीर में उल्लेखनीय स्पंदन व संवेदनाएँ होने लगीं। प्रचलित मान्यता (अनुचित) के अनुसार, न तो मेरे शरीर में कोई कंपन हुआ और न ही कोई आँखें चौंधिया देने वाला प्रकाश दिखा। मेरे मस्तिष्क में शक्तिशाली संवेदनाएँ जमा होने लगीं और फिर वे सहस्रार तक जा पहुँचीं।

मुझे लगता कि ये गहन संवेदनाएँ निश्चित रूप से, कुंडलिनी जागरण का संकेत थीं इसलिए मुझे इनकी परीक्षा करनी चाहिए। मुझे यह जानना था कि यदि आदि ऊर्जा स्वयं मेरे भीतर प्रकट हुई थीं तो क्या मैं स्वयं वास्तव में देवी हो गया था?

मुझे याद है कि मैं हिमालय के घने वनों में, वन्य पशुओं के बीच आधी रात को घूमता ताकि यह देख सकूँ कि मेरे भीतर कोई भय शेष था या नहीं क्योंकि मृत्यु का भय ही हर प्रकार के भय से बड़ा माना जाता है। मैं सर्पों और बिच्छुओं से घिरे स्थान पर जा बैठता। आधी रात को अक्सर नदी पर चला जाता और आहुति देता, उस समय वहाँ अनेक रात्रिचरों की भरमार होती, जो मेरा स्वागत करते। मैं बुरी तरह से भौंकते हुए जंगली कुत्तों के बीच से निकलता और वे मुझे देख कर शांत हो जाते। वे अपनी दुम हिलाते हुए वहीं बैठ जाते। वे धरती पर लोटने लगते।

अगर मैं आपसे यह कहता कि मैं इस बात की परख़ करने निकलता कि मैंने मृत्यु के भय पर

काबू पा लिया है या नहीं, तो वह पूरा सत्य न होता। सच तो यह है, मैं यह भी देखना चाहता था कि क्या वे भी मेरे भीतर बैठे देवी भाव को महसूस कर रहे हैं। मैं जानना चाहता था कि क्या हम सही मायनों में, उसी आदि ऊर्जा के माध्यम से आपस में जुड़ गए थे? मैं देखना चाहता था कि क्या वे जंगली पशु भी मेरे लिए वैसा ही स्नेह अनुभव कर पा रहे थे, जैसा मैं उनके लिए करता था?

मुझे एक और बात का स्पष्टता से एहसास हुआ कि हर आकार, प्रजाति तथा हर सजीव के व्यवहार में एक ही प्राणशक्ति छिपी थी। मैं उसे देवी कहता हूँ। सजीवों के भय से परे, स्नेह व करुणा की गंगा प्रवाहित होती है। यही कारण है कि हम बारंबार प्रेम करते हैं, प्रेम चाहते हैं, प्रेम देते हैं क्योंकि हम यही तो हैं, हम प्रेम हैं। हम जिस भी चीज़ से बनते हैं, उसे स्वाभाविक तौर पर आकर्षित करते हैं — प्रेम!

जागरण के साथ ही यह बोध भी आता है कि केवल प्रेम ही एक ऐसा भाव है जिसे अपने भीतर स्थान देना और प्रसारित करना चाहिए। आप निःस्वार्थ स्नेह का प्रतिमान हो जाते हैं और यही कुंडलिनी है। कुंडलिनी वह स्नेह है जो आपकी इच्छाओं व सपनों तले कुंडली मारे बैठा है, वह चाहता है कि आप भावों तथा मोह के चक्रों को भेदते हुए, अपने अनंत अस्तित्व के संयोग का अनुभव पा लें। यह एक बोध है कि आप जल की इकलौती बूँद नहीं, जो किसी भी क्षण सूख जाएगी, आप एक अनंत जलराशि का अंश हैं — एक सागर, ऐसा सागर, जो कभी नहीं सूखता।

धरती अपना ठोसपन कभी नहीं छोड़ती। अग्नि कभी जलना नहीं छोड़ती। वायु व प्रकाश कभी बूढ़े नहीं होते। जल कभी प्रवाहित होना नहीं छोड़ता; भले ही जम जाए, भले ही सूख जाए किंतु फिर से अपने असली रूप में वापिस आ जाता है। आपके भय आपको आकार दे सकते हैं। वे आपको जमा सकते हैं, छितरा सकते हैं परंतु अंततः आप अपने मूल स्वरूप में लौट आते हैं।

आपके चेहरे पर झुरियाँ आ सकती हैं, आपकी देह बुढ़ा सकती है, आपकी जीवंतता घट सकती है पर आपके भीतर की मूल ऊर्जा, कुंडलिनी, वह चिर युवा है। वह सारे क्षय व मृत्यु से परे आवेगपूर्ण व सहायिका है। शिव का शक्ति से संयोग होने दें, अपनी ऊर्जा को संभावना से मेल करने दें ताकि आप अपने भीतर रहने वाले के असीम विस्तार का अनुभव पा सकें, उसे देख सकें। आप देख सकें कि आप कितने संपूर्ण, युवा व सुंदर हैं। यह बोध व खोज आपको भ्रमित कर देंगे। यह आपको आश्चर्यचकित करते हुए, सदा के लिए रूपांतरित कर देगा।

मेरे लिए जागरण का यही अनुभव रहा। जाइए, अपना अनुभव खोजिए!

# पारिभाषिक शब्दावली

**अधर्म** धर्म का विपरीत है। कुछ ऐसा जो धर्म के अनुरूप नहीं होता। इसके संकेतार्थ में अस्वाभाविकता, अनुचित होना, दुष्टता, अनैतिकता, बुराई और अवगुण आदि शामिल हैं।

**आदित्य** सौरमंडल के देव हैं, जो स्वर्गीय लोक में रहते हैं। वे विविध ब्रह्माण्डीय तत्वों का प्रतिनिधित्व करते हैं जो इस जगत को बनाए रखने में सहायक हैं। बारह वसु हैं : वरुण, मित्र, आर्यम, भग, अंशुमान, धाता, इंद्र, सवितुर, त्वष्ट, विष्णु, पुष्य, विवसान। विष्णु सभी आदित्यों में प्रधान हैं।

जो साधु शिव से एकात्म होने के लिए घोर तप करते हैं, वे **अघोरी** कहलाते हैं।

नए चाँद की रात **अमावस्या** कहलाती है।

**ब्रह्म ग्रंथि** का अर्थ है ब्रह्मा की ग्रंथि। इसे तीन ग्रंथियों नामक अध्याय में विस्तार से बताया गया है।

**दक्षिणायन** ऐसी अवधि है, जब सूर्य कर्क राशि से धनु राशि की ओर यात्रा करता है। सूर्य की इस दक्षिण की ओर की जाने वाली यात्रा में तीन ऋतुएँ आ जाती हैं : वर्षा, हेमंत तथा शीत ऋतु का अधिकतर समय

**डमरू,** दो मुखी वाद्य यंत्र है जिसे शिव बजाते हैं।

**दंडवतप्रणाम** का अर्थ है, वैदिक परंपरा के अनुसार सम्मान देना। इसमें धरती पर पूरा लेट कर, माथा टेका जाता है।

किसी पवित्र व्यक्ति का दिखना, **दर्शन** कहलाता है जो आशीर्वाद देने की क्षमता रखता हो। यह दर्शन का तंत्र भी है पर यहाँ इसका अर्थ पवित्र दर्शन से ही है।

**देवलोक** देवों का धाम है।

**देव** स्वर्ग में वास करने वाले जीव हैं।

**देवी भाव** में होने का अर्थ है कि भक्त देवी की भक्ति में खोया है। जब किसी भक्त की चेतना देवी में लीन हो जाती है, तो वह अपने हर कार्य को उसी दिव्य भाव में पूरा करता है।

**ध्यान** का अर्थ है ध्यान एकाग्रता की गहरी अवस्था। पतंजलि योग सूत्र के अनुसार, यह समाधि

से पहले की अवस्था है, जिसमें एक संपूर्ण अंतर्दृष्टि व समत्व भाव का होना अनिवार्य है।

**गण** का अर्थ है, सहायकों का दल

स्वर्गिक संगीतज्ञ **गंधर्व** कहलाते हैं।

**हर हर महादेव** एक प्रकार का जयघोष है जिसका अर्थ है, भगवान शिव की जय हो!

**इंद्र** देवों के शासक हैं, जो ब्रह्मा, विष्णु और महेश के बाद आते हैं। हिंदू परंपरा में, वे वर्षा के देव भी हैं।

इंद्र का लोक ही **इंद्रलोक** कहलाता है।

**जय बजरंग बली** का अर्थ है, बजरंग बली की जय हो। यह हनुमान का एक नाम है।

**केवल निर्विकल्प समाधि** , योग में समाधि का एक परम रूप है। इसका शाब्दिक अर्थ है, ऐसी समाधि जिसका कोई दूसरा विकल्प न हो। इसका अर्थ है कि मानसिक गतिविधि यानी चित्तवृत्ति पूरी तरह समाप्त हो गई है और ज्ञाता, जानने के कर्म व ज्ञान की वस्तु के बीच कोई भेद नहीं रहा। यह एक पूर्ण संयोग है जैसे पानी की बूँदें सागर में समा जाती हैं। केवल का अर्थ है कि साधक पहले से ही, बहुत लंबे अरसे से इस समाधि में लीन हो गया है।

**कुशा** एक प्रकार की घास है जिसे आमतौर पर हिंदू धर्म के सभी अनुष्ठानों में प्रयुक्त किया जाता है। प्राचीन समय में, सोने और ध्यान के लिए बनी चटाईयाँ भी कुशा से बनती थीं।

**नमोः पार्वतीः पत्यैः** शब्द का अर्थ है, 'मैं पार्वती के पति भगवान शिव की वंदना करता हूँ।'

**पतिव्रता** का अर्थ है एक सद्गुणी पत्नी! ऐसी स्त्री जिसने किसी परपुररुष को देखा तक न हो, उसके साथ आत्मीयता तो बहुत दूर की बात रही।

**प्रजापति** का अर्थ है, जीवन के प्रजनन व संरक्षण के देव

**पुरुषोत्तम** का अर्थ है, सर्वश्रेष्ठ, सभी पुरुषों में उत्तम

**ऋषि** का अर्थ है मुनि या साधु

**ऋत्विक** का अर्थ है प्रधान पुरोहित

**रुद्र ग्रंथि** शिव की ग्रंथि है। चौथे अध्याय में इसके बारे में विस्तार से बताया गया है।

जो व्यक्ति साधना करे, वह **साधक** कहलाता है। साधक कुछ आध्यात्मिक अभ्यासों को पूरी निष्ठा से पूरा करता है।

**साधना** एक आध्यात्मिक अभ्यास है जो मनुष्य को आत्म-बोध की ओर ले जाती है।

**सहस्रार** शीर्ष चक्र है। इसे सातवाँ प्रधान चक्र माना जाता है।

**समाधि** ध्यान की अंतिम अवस्था है। इसका अर्थ है गहन ध्यान या भीतर व बाहर, उस दिव्यता के साथ पूर्ण संयोग।

**संहिता** से तात्पर्य ग्रंथों के प्राचीनतम रूप से है, जिसे मुनियों ने रचा। वेदों में मंत्र, स्तुति, श्लोक, प्रार्थना व आशीर्वाद आदि पाए जाते हैं।

**सिद्ध** एक दक्ष पुरुष होता है जो कुछ भी करने में सक्षम होता है।

**स्तोत्र** का अर्थ है, स्तुति, प्रशंसा या प्रार्थना में रचा गया श्लोक!

**तपस्वी** का अर्थ है तप करने वाला साधक

**तपस्या** का अर्थ है संयम, आध्यात्मिक साधना या तपश्चर्या

**उत्तरायण** वह समय है, जब सूर्य मकर से कर्क राशि की ओर, दक्षिण से उत्तर की ओर यात्रा करता है। उसकी इस यात्रा में तीन ऋतुएँ आ जाती हैं : शीत ऋतु का अंत, बसंत और ग्रीष्म

**वानर** का अर्थ है बंदर

**वास्तु** शिल्पकला का प्राचीन तंत्र है। इसका शाब्दिक अर्थ है शिल्प विज्ञान

**वसु** इंद्र तथा विष्णु के सहायक देव हैं।

**विद्या** यानी पूजन का कोई रूप। मंत्र विज्ञान में, स्त्रैण ऊर्जा को जाग्रत करने से जुड़े बीज मंत्र भी विद्या कहलाते हैं। किसी भी कौशल का सटीक ज्ञान भी विद्या कहलाता है।

**विष्णु ग्रंथि** यानी विष्णु की ग्रंथि। चौथे अध्याय में इसके बारे में विस्तार से बताया गया है।

**यज्ञ** का अर्थ है, मन में किसी निश्चित धारणा के साथ अनुष्ठानिक यज्ञ रचाना या सभी जीवों के कल्याण के लिए अग्नि में आहुति देना।

**युग** का तात्पर्य है, चार युगों के चक्र में से एक। चार युगों का एक चक्र वृत्त-चाप का प्रतिनिधित्व करता है और 25,92,000 वर्ष की अवधि का है। वे चार युग हैं सत्य युग (17,28,000 वर्ष), त्रेता युग (12,96,000 वर्ष), द्वापर युग (864,000 वर्ष), व कलि युग (432,000 वर्ष)। हिंदू परंपरा के अनुसार, वर्तमान युग, कलियुग है।

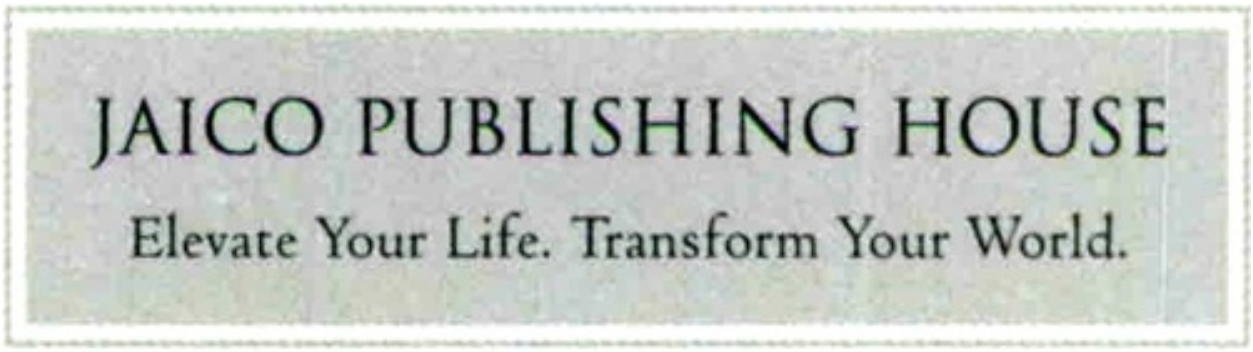


१९४६ में स्थापित जयको पब्लिशिंग हाउस एक ऐसी प्रकाशक संस्था है जिसने मशहूर लेखक श्री श्री परमहंस योगानंद, ओशो, रॉबिन शर्मा, दीपक चोपड़ा, स्टीफन हॉकिंग्ज, एकनाथ ईश्वरन, सर्वपल्ली राधाकृष्णन, निराद चौधरी, खुशवंत सिंह, मुल्क राज आनंद, जॉन मैक्सवेल, क्लेन बेनचार्ड और ब्रायन ट्रेसी जैसे लेखकों की किताबें प्रकाशित की हैं। हमारी सूची में २००० से ज्यादा किताबें शामिल हैं, जो देश में सबसे ज्यादा विविध विषयों पर किताबें रखने वाली संस्था है। इनमें धर्म, आध्यात्मिक, मन शरीर पवित्र आत्मा, स्वयं-मदद, व्यावसायिक, खानपान, हास्यपरक, कैरिअर, खेल, आत्मकथा, फिक्शन और विज्ञान विषय शामिल हैं।

जयको ने अपने क्षितिज का विस्तार शैक्षणिक और व्यावसायिक पुस्तकों, प्रबंधन, इंजीनियरिंग और प्रौद्योगिकी की किताबों के व्यापार में अग्रणी प्रकाशक के रूप में किया है। हमारे महाविद्यालय स्तर के पाठ्यपुस्तकों और संदर्भ शीर्षक देशभर के छात्र कर रहे हैं। हमारे शैक्षणिक और व्यावसायिक किताबों की सफलता काफी हद तक हमारे शैक्षणिक और कॉर्पोरेट बिक्री प्रभागों के प्रयासों के कारण है।

स्वर्गीय श्री. जमन शाह ने पुस्तक वितरण कंपनी के रूप में जयको की स्थापना की। स्वतंत्रता आंदोलन चल रहा था इसलिए उन्होंने अपनी कंपनी को जयको (हिंदी में जय का मतलब जीत) नाम दिया। विकसनशील देशों में किताबों की उल्लेखनीय मांग को देखते हुए श्री. शाह ने खुद ही किताबें प्रकाशित करने का फैसला किया। जयको देश की पहली प्रकाशन कंपनी है जिसने अंग्रेजी भाषा की पेपरबैक पुस्तकें प्रकाशित की।

अपनी किताबों के प्रकाशक और वितरक होते हुए जयको ने मैकग्रा हिल, पियर्सन, सेंगेज लर्निंग, जॉन वाइली और एल्सवेयर साइंस इन प्रमुख अंतरराष्ट्रीय प्रकाशकों की पुस्तके वितरित करने का काम शुरू किया। मुम्बई में मुख्यालय के साथ, जयको के बिक्री कार्यालय अमदाबाद, बैंगलोर, भोपाल, भुबनेस्वर, चेन्नई, दिल्ली, हैदराबाद, कोलकाता और लखनऊ में भी हैं। चालीस अधिकारियों से अधिक की बिक्री टीम, डाइरेक्ट मेल आर्डर डिवीजन और वेबसाइट सुनिश्चित करती है कि हमारी किताबें प्रभावी ढंग से देश के सभी शहरी और ग्रामीण इलाकों तक पहुँचे।



SINCE 1946

**आपको प्रसन्नता के परम लोक में प्रवेश पाने के लिए साधु बनने की आवश्यकता नहीं है!**

जी हाँ, यह सत्य है ।

हिमालय के एक तपस्वी, अपनी पुस्तक कुंडलिनी – एक अनकही कथा में, कुंडलिनी की रहस्यमयी कथा सुना रहे हैं, जो देवी का निराकार रूप अथवा आपकी आदि ऊर्जा है ।

लेखक इस ऊर्जा स्त्रोत के जागरण के लिए चरणों का वर्णन करते हुए, अपने चिर-परिचित हास्यप्रिय अंदाज़ में कुंडलिनी व इसके सात चक्रों का गुप्त और व्यावहारिक अर्थ प्रकट कर रहे हैं । ये रोचक प्रसंग उनके निजी अनुभवों पर आधारित हैं, जिन्हें उन्होंने वर्षों की गहन साधना से पाया है ।

इस अद्भुत प्रेरणा से भरी यात्रा पर चलने के लिए तैयार हो जाएँ – यह कुछ ऐसा है जो आपको आध्यात्मिकता पर लिखी गई किसी दूसरी पुस्तक से नहीं मिल सकता – जिसमें कुंडलिनी के मूल से ले कर, आधुनिक युग में स्वामी जी की अपनी साधना तक शामिल है ।



**ओम स्वामी** एक संन्यासी हैं जो हिमालय की तलहटी में स्थित आश्रम में रह रहे हैं । उन्होंने व्यवसाय में स्नातक की डिग्री प्राप्त की और वे सिडनी, ऑस्ट्रेलिया से एमबीए हैं । इस संसार का त्याग करने से पूर्व, उन्होंने मल्टी मिलियन डॉलर की सॉफ्टवेयर कंपनी की स्थापना और सफल संचालन किया । वे 'ए फिस्टफुल ऑफ़ लव' तथा 'सत्य कहूँ तो' के बेस्टसेलिंग लेखक हैं ।

JAICO BOOKS
www.jaicobooks.com Religion & Philosophy